5-1

॥ ॐ ॥

कैवल्योपनिषद्भाष्यम्

(मूलमन्त्र हिन्दीभाष्य सहित)

ब्रह्मविद्या तथा योग का अनुपम रत्न

भाष्यकर्ता

मनोहरलाल शर्मा M. A., 'गुरुभक्तरत्न'

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कैवल्यप्राप्तस्य योगिनः प्रशंसनम्

स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिलैः दत्ता च पृश्वी द्विजे,
नूनं तेन सुतर्पिताश्च पितरो देवाश्च संपूजिताः ।
यज्ञानाञ्च सहस्रमेवमखिलं तेनैव सर्वं कृतं,
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि प्राप्तञ्च धैर्यं मनः ।।१।।

कैवल्यप्राप्त योगी की प्रशंसा

जिस महानुभाव का ब्रह्मचिन्तनपरायण मन एक क्षण के लिये भी धैर्ययुक्त हो टिक गया, उस पुरुषश्रेष्ठ ने सम्पूर्णतीर्थों के जल में सुमहोदार स्नान का अखण्डलाभ ले लिया ; उसे ब्राह्मण को भूमिदान देने का सत्फल मिल गया। इस ब्रह्मविचारचिन्तक व्यक्ति ने अवश्य ही अपने पित्रेश्वरों को सुष्ठुतया तृप्त कर दिया, यही नहीं भलीप्रकार देवगण की भी उसने सुललित पूजा कर ली, हजारों हजार यज्ञों के करने का संपूर्ण फल उस मनुष्यश्रेष्ठ ने प्राप्त कर लिया। अहो ! ब्रह्म-चिन्तक योगी को क्या-क्या नहीं प्राप्त हुआ ? अर्थात् सब इष्टफलों की प्राप्ति हो गई।

परतत्त्वज्ञस्य लक्षणानि—

निःस्पृहो नित्यसन्तुष्टः समदर्शी जितेन्द्रियः ।
आस्ते देहे प्रवासीव स योगी परतत्त्ववित् ।।२।।
निःसङ्कल्पो निर्विकल्पो निर्जितोपाधिवासनः ।
नित्यस्वरूपनिर्मग्नः स योगी परतत्त्ववित् ।।३।।
यथा पंग्वन्धवधिरक्लीबोन्मत्त–जड़ादयः ।
निवसन्ति च सर्वत्र स योगी परमो मतः ।।४।।

[कौलावल्यां नवमोल्लासे]

परतत्त्व के ज्ञाता के लक्षण

जो निःस्पृह नित्यसन्तुष्ट समद्रष्टा जितेन्द्रिय है और इस देह की विनाशशीलता का ध्यान रख उस में जैसे प्रवास करनेवाला व्यक्ति अल्पकाल की अवधि तक किसी विश्रामस्थान में निवास करता है वैसे ही अपना सम्बन्ध देखता है ऐसा योगी परतत्त्व का जाननेवाला है।

निःसङ्कल्प (सङ्कल्परहित) विकल्प रहित उपाधि और वासना को जीता हुआ अपने अद्वय नित्यस्वरूप में निमग्न (रमण करनेवाला-आत्माराम) योगी ही परतत्त्ववेत्ता है।

जैसे लूला, लङ्गड़ा, अन्धा, बहरा, नपुंसक, उन्मत्त (पागल) और वज्रमर्ख लोग रहते हैं (आचरण करते हैं) उसी प्रकार अपनी विपरीत परिस्थितियों में अनुकूलता का भाव बरतनेवाला योगी सबसे ऊँचा है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कैवल्योपनिषद्भाष्यम्

मनोहरलाल शर्मा M. A. 'गुरुभक्तरत्न'

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

प्रकाशक तथा प्राप्तिस्थान
१०८ श्रीनारायण स्वामी की आज्ञा से
प्रधान मंत्री
C/o गुरुमण्डल प्रकाशन
५, क्लाइव रो, कलकत्ता—१

लेखक की अन्य टीकायें

१—श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रणीत 'ब्रह्मानुचिन्तनम्' पर 'ओंकारी प्रदीपिका'—(अद्वैतवेदान्त का यह सूक्ष्म ग्रंथ संन्यासियों और प्रौढ़ मुमुक्षुओं के अभ्यास के लिये परम उपयोगी है।)

२—श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रणीत 'अपरोक्षानुभूतिः' पर 'चन्द्रकान्त प्रदीपिका'—(अद्वैतवेदान्त का यह ग्रंथ स्त्री-पुरुष सब के लिये परम उपयोगी है।)

३—श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रणीत 'विवेकचूडामणिः' पर 'सप्त प्रकरणी-ओंकारी प्रदीपिका'—(अद्वैतवेदान्त का सर्वाङ्ग पूर्ण यह ग्रंथ मुमुक्षुओं के लिये अनिवार्य है।)

४—भगवान वेदव्यासप्रणीत 'श्रीरामगीता' पर 'ब्रह्मविवेचनी प्रदीपिका'—(इस ग्रंथ में भगवान राम ने लक्ष्मण के मोहनिवारण के लिये ब्रह्मज्ञान दिया है।)

५—श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रणीत 'आत्मबोधः' पर 'ओंकारी-प्रदीपिका'—(अद्वैतवेदान्त का यह सरल सुबोध ग्रंथ है।)

६—श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रणीत 'वाक्यवृत्तिः' पर 'संजीवनी प्रदीपिका'—(इस ग्रंथ में महावाक्य का अर्थ निरूपण किया गया है।)

७—श्रीमच्छंकरभगवत्पादप्रणीत 'स्वात्मनिरूपणम्' पर 'स्वयंसिद्धा प्रदीपिका'—(आत्मस्वरूप का अद्भुत निरूपण है।)

जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा० लि० १७८, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता—३

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्मरणीय

श्रद्धत्स्व तात श्रद्धत्स्व नात्र मोहं कुरुष्व भोः ।
ज्ञानस्वरूपो भगवानात्मा त्वं प्रकृतेः परम् ।।८।।
मा संकल्पविकल्पाभ्यां चित्तं क्षोभय चिन्मय ।
उपशाम्य सुखं तिष्ठ स्वात्मन्यानन्दविग्रहे ।।१९।।
त्यजैव ध्यानं सर्वत्र मा किंचिद्धृदि धारय ।
आत्मा त्वम्मुक्त एवासि किं विमृश्य करिष्यसि ।।२०।।

(अष्टावक्रगीता, अध्याय १५)

हे तात ! (राजा जनक) तुम मेरे वचनों में श्रद्धा करो, श्रद्धा करो । तुम इस विषय में मोह को मत प्राप्त होओ । तुम ज्ञान-स्वरूप, भगवान, आत्मा हो और माया की पहुँच से बाहर हो ।।८।।

हे चेतनस्वरूप ! भिन्न-भिन्न प्रकार के संकल्प-विकल्पों से चित्त को क्षुब्ध मत करो । संकल्प-विकल्पों को शान्त करो और आनन्द-मूर्ति अपने आत्मा में सुख से अवस्थान करो ।।१९।।

हे तात ! समस्त दृश्य विषयों का ध्यान त्याग ही दो, हृदय में कोई विषय मत धारण करो, क्योंकि तुम असंग आत्मा हो, सर्वकाल में मुक्त ही हो, ध्यान करके क्या करोगे ।।२०।।

अभ्यसनीय

(श्रीगुरुदेव के उपदेशचतुष्टय में से तृतीय उपदेश मुमुक्षुओं के हित के लिये प्रकाशित किया जाता है—मनोहरलाल शर्मा)

तृतीय उपदेश

जिस प्रकार से भी हो यह जानो कि यह संसार स्वप्न की न्याईं माया का विलास, मन की स्फुरणा, दृष्टनष्टस्वरूप, प्रातीतिक, अपने ही विवर्त स्वरूप से अभिन्न है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

तुम माला के मणियों में सूत्र की न्याईं सारे शरीरों में व्यापक, सर्व से संबंधरहित असंग, निर्विकार, निर्लेप, अकर्ता, अभोक्ता, अक्रिय, स्वयंप्रकाश, एकरस, सम, देश-काल-वस्तु परिच्छेदरहित, विजातीय-सजातीय-स्वगतभेदशून्य, सत्तामात्र से सर्व के प्रेरक, प्रकाशक, उत्पादक, रक्षक, पोषक, संहारक, सर्वाधिष्ठान, सर्वनाम, सर्वात्मा, सर्वसाक्षी, सर्वरूप, सर्वरहित, सर्वातीत, निर्विकल्प, अच्युत, अद्वैत, परमशान्त, सच्चिदानन्दघन, परिपूर्ण, निरवयव, निराकार, निरंजन, माया और माया के कार्य से रहित, शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव, स्वमहिमा में स्थित हो।

तुम्हारे स्वरूप सच्चिदानन्द महासागर में जगत् फेन, जीव बुद्बुद तथा माया तरंग है। तुम ही माया द्वारा अज्ञानियों को सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर और ज्ञानियों को मायोपहित ब्रह्म भासते हो। शास्त्र तुम्हारा उद्गार अथवा श्वास है। ऋषि, देवता, पितर तुम्हारी विभूतियाँ हैं। सब तुम्हीं हो, प्रसन्न रहो, मोक्ष पाओ। श्रीशिवार्पणमस्तु।

ओंकाराश्रम दंडी

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri
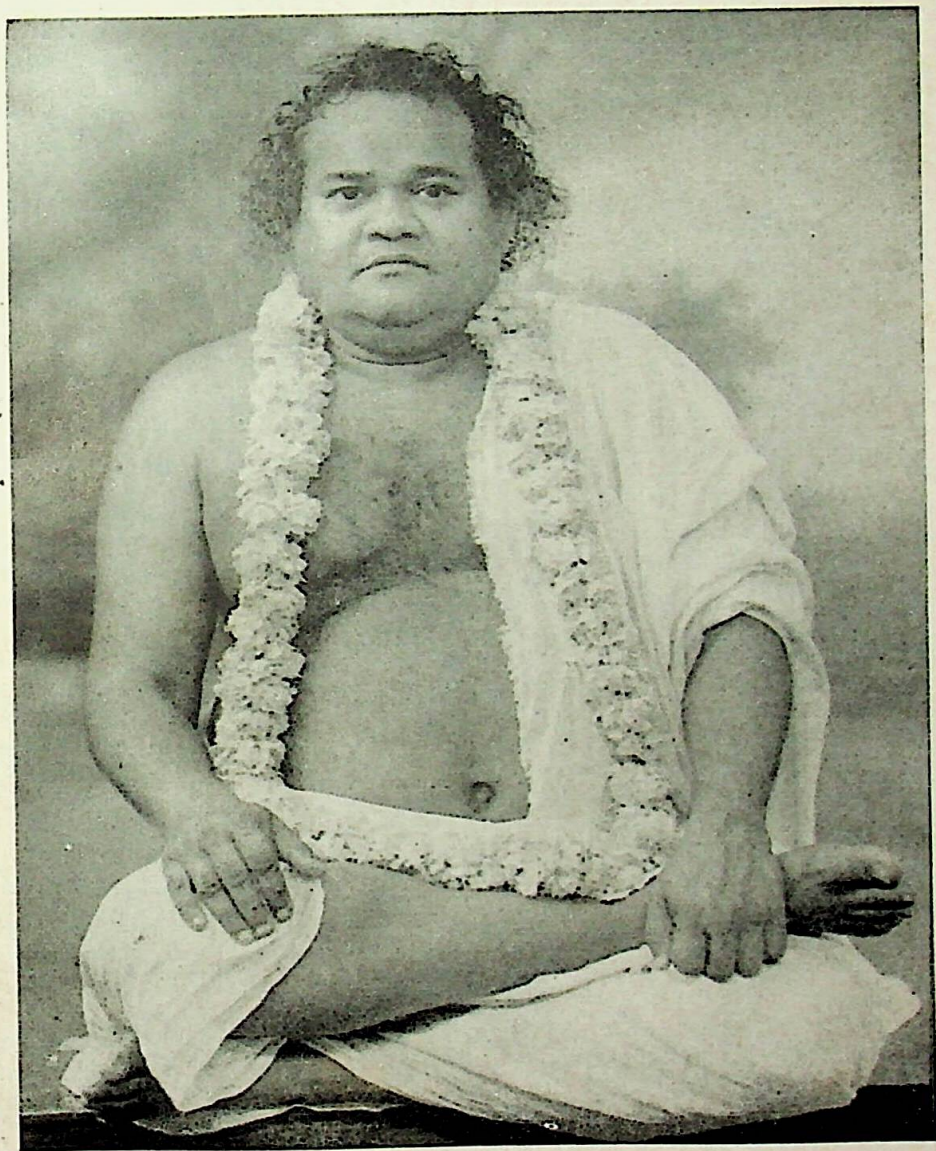
कैवल्योपनिषद्भाष्यम्

प्राक्कथन

चारों वेद ही जिनके मुख हैं, उन भगवान् ब्रह्मा ने आश्वलायन नामक विद्वान् को कैवल्योपनिषद् में ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया है। इसमें दो खण्ड ; पच्चीस मंत्र हैं। मुख्य तो प्रथम खण्ड ही है, दूसरे खण्ड में केवल फलश्रुति है। इस उपनिषद् को ज्ञानियों की शतरुद्रीय भी कहते हैं। इस उपनिषद् के पठन, मनन, अभ्यास से ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है और भवबंध भंजित होते हैं।

जिज्ञासु परमहंस संन्यासी इसका नित्य पाठ करते हैं। अन्य भी मुमुक्षु इसका पाठ कर सकते हैं। इसके दीर्घ अभ्यास से महापातक नष्ट हो जाते हैं, और ज्ञान-सूर्य प्रकाशित होता है, इसमें सन्देह नहीं करना। हमारे श्रीगुरुचरण कहा करते कि ब्रह्मचारियों की शतरुद्री से इस शतरुद्री के पठन का सौ गुना फल है। ज्ञानमार्गियों के लिये इस ग्रंथ का आश्रय सुखद सरल और ध्रुव फलदायी है। इसे कण्ठ करके नित्य पाठ करना चाहिये और मन्त्रों का अर्थ-विचार करना चाहिये। अधिक क्या कहूँ, सर्वज्ञ ईश्वर ब्रह्मा जी के वचनों के अनुसार जो इस शतरुद्रीय का अध्ययन करेगा, वह 'कैवल्यं फलमश्नुते' कैवल्यमोक्षरूप फल भोगता है।

कैवल्योपनिषद् के मन्त्रों में महाकाव्यों जैसा पदलालित्य, सागर जैसी गंभीरता, शिशु जैसी सरलता, भगवान कृष्ण जैसा आकर्षण तथा सृष्टि जैसी पूर्णता है। मौलिकता, लघुता और पूर्णता की दृष्टि से यह उपनिषद् उच्चकोटि का महाप्रभ रत्नशिरोमणि है। इस ग्रंथ में ब्रह्मविद्या प्राप्ति के साधन, ब्रह्म का निर्गुण, सगुण स्वरूप, मोक्ष के कई उपाय, त्रिजीव तथा त्रिधाम की ब्रह्म से अभिन्नता, जीवन्मुक्तों का अनुभव तथा ब्रह्मविद्या का फल इत्यादि विषय दिये हैं। भला ब्रह्मा जी जैसा ब्रह्मविद्या का उपदेष्टा कौन हो सकता

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है ! जिनके मानसपुत्र और शिष्य महर्षि वसिष्ठ ने योगवासिष्ठ जैसे अगाध ज्ञान ग्रंथ का भगवान राम को उपदेश दिया ।

इसकी दो संस्कृत टीकायें हमको देखने को मिलीं, नारायण और शंकरानन्द की । नारायणी टीका में अस्पष्ट पदों की ही व्याख्या है, शंकरानन्दी अधिक पूर्ण है, परन्तु प्रमाणों का अभाव है । इसके अतिरिक्त सूतसंहिता में सूतजी ने कैवल्योपनिषद् के रहस्य खोले हैं । सूतजी की प्रामाणिकता का तो कहना ही क्या है, क्योंकि उन्होंने द्वापर के जगद्गुरु भगवान वेदव्यासजी से ही साक्षात् ब्रह्मविद्या सीखी है । मैं इन तीनों महान् आचार्यों का आभारी हूँ ।

'आपरितोषाद् विदुषां न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम् । बलवदपि शिक्षितानामात्मन्यप्रत्ययं चेतः'। (महाकवि कालिदास)। पाठक ही जानेंगे, ब्रह्माजी के विशेष शक्तिपात से उनके प्रिय ग्रंथ कैवल्योपनिषद् पर प्रस्तुत भाष्य संभव हो सका है । मैं उनको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ ।

भाद्रपद कृष्ण-जन्माष्टमी
विक्रम संवत् २०२४
२८-८-६७

नम्र निवेदक
ब्रह्मानुकम्पाप्राप्त
मनोहरलाल शर्मा

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ॐ

कैवल्योपनिषद्भाष्यम्

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

श्रीपरब्रह्मणेनमः

विश्वविख्यात महात्मा करपात्री का आशीर्वाद

आप (पं० मनोहरलाल शर्मा)

गुरु कृपा प्रसाद प्राप्त मंजे मंजाये वेदान्त विचारक हैं। हरिस्मरणात्मक आशीर्वाद के अतिरिक्त आप के लिये और क्या लिखा जाय।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

* श्रीगणेशाय नमः *

॥ श्रीगुरवे नमः ॥

कैवल्योपनिषद्भाष्यम्

मङ्गलाचरणम्

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च,
व्यासं शुकं गौडपादं महान्तं गोविन्द-योगीन्द्रमथास्य शिष्यम् ।
श्रीशंकराचार्यमथास्य पद्मपादञ्च हस्तामलकं च शिष्यम्,
तं त्रोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून् सन्ततमानतोऽस्मि ॥१॥

ब्रह्मविद्या के आदिगुरु नारायण को, ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति तथा उनके पुत्र पराशर, वेदव्यास, शुकदेव, महान् गौडपादाचार्य, योगीराज गोविन्दपादाचार्य, उनके शिष्य श्रीमच्छंकरभगवत्पाद और उनके शिष्यसमुदाय पद्मपाद, हस्तामलक, त्रोटकाचार्य तथा सुरेश्वराचार्य एवं ब्रह्मविद्या के हमारे अन्यगुरुजनों को मैं सदा प्रणाम करता हूँ ॥१॥

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम्
नमामि भगवत्पादं शंकरं लोकशंकरम् ॥२॥

श्रुति स्मृति और पुराणों के निधि, करुणा के सागर, लोक का कल्याण करनेवाले भगवत्पाद भगवान शंकर को प्रणाम करता हूँ ॥२॥

नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव ।
सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे ॥३॥

हे भगवति ब्रह्मविद्ये सरस्वति ! मैं आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। सब कामनाओं को पूरा करनेवाली मंगलमयि देवि ! आप मेरी बुद्धि को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करें ॥३॥

ओंकारं परमानन्दं विद्यावारिधिमद्वयम् ।
मोहध्वान्तविनाशायाऽहस्करं तं नतोऽस्म्यहम् ॥४॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गुरुदेव स्वामी ओंकाराश्रमजी दंडी को, जो ब्रह्मविद्या के अगाध सागर हैं, और ब्रह्मवित् होने से शुद्ध परमानन्दरूप ब्रह्म ही हैं, जो अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने के लिये सूर्य-तुल्य हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ ।।४।।

यस्य कारुण्यदृष्टचैव जडो भवति बोधवान् ।
महावेदान्तपञ्चास्यं यतिवर्यं नतोऽस्म्यहम् ।।५।।

जिनकी कृपाकटाक्षमात्र से मूढ़ भी ज्ञानवान हो जाता है, ऐसे महावेदान्तकेसरी श्रेष्ठ संन्यासी को मैं प्रणाम करता हूँ ।।५।।

सृजति कमलसंस्थो दृश्यमात्रं सदा यो
निखिल-निगमतत्त्वज्ञानिनां च प्रधानम् ।
अपरिहतसमाधिं सत्यसंकल्पमेतं
परिविमल-चरित्रं तं नवे हंसवाहम् ।।६।।

जो भगवान विष्णु के नाभिकमल में स्थित समस्त दृश्य प्रपंच की रचना करते हैं, जो समस्त उपनिषत्तत्त्व के ज्ञानवानों में प्रधान हैं, जो निरन्तर समाधि में विराजमान रहते हैं, और सत्य संकल्प हैं, हंस जिनका वाहन है, उन परम पवित्र चरित्रवाले ब्रह्माजी को मैं प्रणाम करता हूँ ।।६।।

कमलासन-शासन शीश चढ़ा, शतरुद्रिय - विधृत ज्ञानसुधा ।
प्रकटीकरणे गुरु - रंग - मना, रचते सुमनोहर भाष्य मुदा ।।
जगदावाग्नि झुलसित तनमन, सत्पंथ - गवेषण तत्परजन ।
कर पान सुधा हो हर्षित मन, करते वसुधा को ब्रह्मसदन ।।
इस भांति सदा सब आत्ममगन, माया-परिचालित इन्द्रियगण ।
भवभीति मिटे यमफंद फटे, मनपंख कटे चिरशान्ति मिलन ।।

ईश कृपा ते लहत हैं, ज्ञानग्रंथ सुखधाम ।
तापै मनहरभाष्य हो, पूरण मंगल काम ।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कैवल्योपनिषद्भाष्यम्

भाष्यकर्त्ता—**पं० मनोहरलाल शर्मा, एम० ए०, 'गुरुभक्तरत्न'**

मुक्ति पाँच प्रकार की कही जाती है। मुक्तिकोपनिषद् में हनुमान जी द्वारा पूछा जाने पर रामजी ने बताया कि चार प्रकार की मुक्तियाँ तो उपासना से प्राप्त हो जाती हैं, अर्थात् सालोक्यमुक्ति (देहपात के उपरान्त इष्टदेव के लोक की प्राप्ति), सारूप्यमुक्ति (देहपात के उपरान्त इष्टदेव के लोक में इष्टदेव के रूप की प्राप्ति), सामीप्यमुक्ति (इष्टदेव के लोक में इष्टदेव के रूप की प्राप्ति तथा उनके समीप निवास की प्राप्ति) तथा सायुज्यमुक्ति (इष्टदेव के साथ युक्त होना)। 'चतुर्विधा तु या मुक्तिर्मदुपासनया भवेत्।' परन्तु पाँचवीं प्रकार की मुक्ति जिसे कैवल्यमुक्ति कहते हैं और जो परमार्थ-स्वरूपा है, मेरी उपासना से प्राप्त नहीं होती। उसके लिये उपनिषदों का विचार करना पड़ेगा, कैवल्यमुक्ति विचार-साध्य है, उपासना-साध्य नहीं। चूंकि कैवल्योपनिषद् के पाठ, विचार तथा अभ्यास का फल कैवल्यमोक्ष है, अतः इसका नाम कैवल्योपनिषद् पड़ा है। इस उपनिषद् के द्वितीय खंड के अन्त में कहा है, 'कैवल्यं फलमश्नुते' इस उपनिषद् के ज्ञान से कैवल्यमोक्ष का फल मिलता है। कैवल्यमुक्ति किसे कहते हैं ?

केवल का भाव कैवल्य, यानी जिस अवस्था में ब्रह्मज्ञान के प्रभाव से केवल एक अद्वितीय ब्रह्मतत्त्व की अनुभूति हो, वह कैवल्यावस्था कहलाती है। इस अवस्था में ज्ञानवान सर्वोपाधिविनिर्मुक्त, त्रिगुणातीत, सर्वसुखदुःखरहित होता है। इसीको जीवन्मुक्ति की अवस्था भी कहते हैं। कैवल्यमुक्ति भी दो प्रकार की होती है। एक तो शरीर-धारण रखते हुए कैवल्यमुक्ति और दूसरी जीवन्मुक्त के शरीरपात होने पर विदेह-कैवल्यमुक्ति। जीवन्मुक्ति में मन का

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्वरूप नाश होता है, और विदेह कैवल्य में मन का अरूप नाश होता है। प्राण-धारण रखते हुए सर्वभवबन्धों यानी त्रिदेह उपाधि से छुटकारा पा कर अपने सच्चिदानन्दघन स्वरूप में अवस्थान करना कैवल्यमोक्ष है, इस अवस्था में द्वैत की गंध भी नहीं रहती। समाधि अवस्था में तो संसार का अत्यन्ताभाव ही हो जाता है, समाधि से उठने पर भी जगत् ब्रह्मरूप ही भासता है, अद्वितीय ब्रह्म से भिन्न नहीं भासता, क्योंकि उसके अहंकार और वासना गलित हो चुकते हैं।

कैवल्योपनिषद् में जो ज्ञान है, उसके सिद्ध होने पर कैवल्यमोक्ष हो जाता है। इसी पक्ष पर इस उपनिषद् का विशेष उपदेश है। केवल एक अद्वितीय ब्रह्म तत्त्व ही ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, विष्णु, प्राण, काल, अग्नि, चन्द्रमा, भूत सृष्टि, वर्तमान सृष्टि, भावी सृष्टि के रूप में प्रकाशित था, है, होगा। वही जीव का स्वांग कर जाग्रत् में स्थूल भोग, स्वप्न में सूक्ष्म भोग तथा सुषुप्ति में अज्ञान से ढका ब्रह्मानन्द भोगता है। वही तीनों पुरों में लीलावश क्रीड़ा करता है, उसीमें सृष्टि का उदय, स्थिति और लय होता है, और वही तू है, तू ब्रह्म से पृथक् नहीं। तू सर्वसुख, शान्ति, आनन्दरूप, अज, अमर, अविनाशी ब्रह्म है। चूंकि यह उपनिषद् ब्रह्म के केवल भाव को प्रकाशित करती है, अतः इसका नामकरण कैवल्योपनिषद् है।

इस उपनिषद को शतरुद्री भी कहा है—'यः शतरुद्रीयमधीते' जो शतरुद्री का पाठ करेगा। शंका—कैवल्योपनिषद में, जिसे शतरुद्री भी कहा है, रुद्र के सौ मन्त्र तो नहीं हैं, फिर इसे शतरुद्री क्यों कहा? समाधान—दो शतरुद्री हैं, एक तो मन्द आरम्भिक उपासकों के लिये, और दूसरी ज्ञानाधिकारियों के लिये। प्रस्तुत शतरुद्री ज्ञानाधिकारियों के लिये है। उपासकों की शतरुद्री का उल्लेख जाबालोपनिषद में आया है, उसमें सौ मंत्र हैं। जाबालोपनिषद् के तीसरे खंड में ब्रह्मचारियों ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'किं जाप्येन अमृतत्वं, ब्रूहि इति'। किस जप से अमरता (कैवल्यमोक्ष, ब्रह्मज्ञान) प्राप्त हो सकता है, कृपया आप बतायें। इस प्रश्न के उत्तर में याज्ञवल्क्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ने कहा, 'शतरुद्रीयेण इति, एतानि ह वा अमृतनामधेयानि, एतैर्ह वा अमृतो भवति इति।' शतरुद्री के जप से। ये सौ (मंत्र) अमृत-नाम वाले हैं। इनके जप से सत्त्वशुद्धि द्वारा अमरता (मोक्ष) प्राप्त होती है।

जिस शतरुद्रीय के प्रति याज्ञवल्क्य ने संकेत किया है वह शतरुद्रीय कौन सी है?

षट्षष्टि नीलसूक्तं च षोडशर्चस्तथैव च।।
एष ते द्वे नमस्ते द्वे नतं वि द्वयमेव च।
मीढुष्टं चतुष्कं च एतद्धि शतरुद्रियम्।।

अब शतरुद्रीय का विवरण देते हैं। 'नमस्तेरुद्रम०' से लेकर रुद्राष्टाध्यायी के ५वें अध्याय के ६६ मन्त्र। नीलसूक्त के 'वयं सोमेति' से लेकर रुद्री के ८ मन्त्र। 'नमस्ते' इत्यादि से लेकर ५वें अध्याय के १६ मंत्र। 'एष ते' तथा 'अवरुद्रमिति' छठे अध्याय का दूसरा तीसरा मंत्र, कुल २ मंत्र। 'नमस्ते' तथा 'या ते रुद्रशिवा' इति पाचवें अध्याय का पहला, दूसरा मंत्र, कुल दो मंत्र। इसके उपरान्त नीचे लिखे दो मन्त्र—

न तं विदाऽथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चा सु तृप उक्थशासश्चरन्ति।।
विश्वकर्माह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा।।

यजुर्वेद संहिता १७।३१।३२

अन्त में 'मीढुष्टमशिव' इत्यादि पाँचवे अध्याय के ५१, ५२, ५३, ५४ चार मंत्र। इस प्रकार शतरुद्री जप के १०० मन्त्र हैं—(६६+८+१६+२+२+२+४)। इन्हें शतरुद्रीय कहते हैं। 'रुद्रजापी दहेत्पापम्'—रुद्र के शतमंत्र जपने वाला पाप दहन करता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

याज्ञवल्क्य जी ने ब्रह्मचारियों को इस प्रकार की शतरुद्री क्यों बताई ? मोक्ष संवंधी प्रश्न करने से ब्रह्मचारियों के अन्त:करण शुद्ध से प्रतीत होते हैं, परन्तु अतीवशुद्ध नहीं, अतः उनको क्रमसंन्यास का उपदेश दिया है यानी ब्रह्मचारी से गृहस्थी बने, गृहस्थी से वानप्रस्थी, और अन्त में संन्यासी बने। ब्रह्मचारियों के चित्त में अभी विवाहादि की अभिलाषा है, अतः वे व्याकुल चित्त हैं और ब्रह्मविद्या समझने में असमर्थ हैं। इसलिये याज्ञवल्क्य जी ने उनको आरम्भिक अधिकारी जान कर प्रथम सरल उपाय वताया है, यानी शतरुद्रीय के जप से क्रम कर शुद्धबुद्धि द्वारा अमृतत्व यानी मोक्ष प्राप्त होता है।

परमहंसों के लिये अर्थात् मुमुक्षुओं के लिये कैवल्योपनिषद ही शतरुद्रीय है। यह बात ब्रह्मा जी ने दर्शाई है। ज्ञानमार्गियों के लिये प्रस्तुत कैवल्योपनिषद ही शतरुद्रीय का स्वरूप है। इस ग्रंथ में प्रश्नकर्ता प्रगाढ़ विद्वान् शुद्धसत्त्व ऋग्वेदाचार्य आश्वलायन है, अतः ब्रह्माजी उनको ब्रह्मचारियों वाली शतरुद्री थोड़े ही वतायेंगे। ब्रह्माजी ने उनको सर्वोत्तम अधिकारी जान कर ब्रह्मविद्या का ही उपदेश दिया है।

अव यथामति भाष्य आरम्भ होता है। पहले शान्तिपाठ पढ़ा जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद—ये चार वेद हैं। यजुर्वेद के शुक्लयजुर्वेद तथा कृष्णयजुर्वेद दो विभाग हैं। इस प्रकार पाँच वेदों के अन्तर्गत पाँच प्रकार की उपनिषदों के पाँच शान्तिपाठ हैं। कैवल्योपनिषद कृष्णयजुर्वेद की शाखा है। अतः इसका शान्तिपाठ पढ़ा जाता है।

ओं सह नाववतु ।। सह नौ भुनक्तु ।।
सह वीर्यं करवावहै ।। तेजस्वि नावधीतमस्तु ।।
मा विद्विषावहै ।। ओं शान्तिः ! शान्तिः ! ! शान्तिः ! ! !

अर्थ—परमात्मा हम दोनों की (आचार्य और शिष्य की) साथ-साथ रक्षा करें। हम दोनों का साथ-साथ पालन करें। हम

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

दोनों विद्यासंबंधी पुरुषार्थ साथ-साथ करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम दोनों एक दूसरे से द्वेष न करें। त्रिविधि ताप की शान्ति हो।

व्याख्या—ब्रह्मविद्या के अध्ययन में बहुत से विघ्न आया करते हैं, इसलिये उनके शमन के लिये शान्ति पाठ किया जाता है। भिन्न उपनिषद-शाखाओं के भिन्न शान्ति पाठ होते हैं। प्रस्तुत शान्तिपाठ कृष्णयजुर्वेदीय कैवल्योपनिषद का है। पहले परमात्मा से रक्षा की प्रार्थना है। **ओं सह नौ अवतु**—शास्त्र में प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में ॐ कार के उच्चारण का विधान है। ओंकार के बिना वेदमंत्र शिरोहीन माने जाते हैं। ॐ कार परमात्मा का प्रतीक कल्याणवाची अक्षर है। विद्या के स्वरूप का प्रकाश करके वह हम दोनों यानी आचार्य और शिष्य की रक्षा, पालन करे। वह कौन? कैवल्योपनिषद से प्रकाशित परमात्मा हमारी रक्षा करे। शंका-विद्या के स्वरूप का प्रकाश तथा रक्षा इनका संबंध असंगत है, रक्षा तो शत्रुओं से की जाती है। समाधान-ब्रह्मविद्या के अध्ययन का प्रयोजन ब्रह्मविद्या के स्वरूप को जानना है। यदि अध्ययन करने पर भी हमारे लिये ब्रह्मविद्या प्रकाशित नहीं होती है, यानी हम उसके स्वरूप को नहीं जान सकें, तो हमारा पुरुषार्थ व्यर्थ ही होगा, उत्साह भंग होगा, हम कृतकृत्य नहीं हो सकेंगे। इन अनर्थों से बचने का उपाय केवलमात्र ब्रह्मविद्या के स्वरूप का प्रकाश है, अतः वह परमात्मा विद्या के स्वरूप को व्यक्त करके हमारी रक्षा करे।

शंका—आचार्य को तो विद्या प्रकाशित होती ही है, अतः उसको विद्या के स्वरूप के प्रकाश से रक्षा की क्या आवश्यकता? समाधान—यह ठीक है। ब्रह्मविद्या आचार्य परम्परा से आती है। अतः गुरु के ऋण से मुक्त होने के लिये आचार्य को अपनी विद्या अधिकारी शिष्य को देनी पड़ती है, अतः उसे भी रक्षा की आवश्यकता है। अथवा शिष्य के संबंध से आचार्य को रक्षा की अपेक्षा है। आचार्य

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

की सफलता शिष्य की सफलता में है। यदि शिष्य को आचार्य द्वारा उपदिष्ट ब्रह्मविद्या व्यक्त नहीं होती है, तो आचार्य पुनः दूसरे दूसरे ढंग से उपदेश करता है, जिससे कि शिष्य पूर्णरूप से अवगत हो सके, क्योंकि सद्गुरु अकारण ही अधिकारियों पर दयालु होते हैं।

सह नौ भुनक्तु—वह परमात्मा ब्रह्मविद्या के फलप्रकाश से हम दोनों का पालन करे। ब्रह्मविद्या का फल तो उस विद्या के स्वरूप अवगति में अनुगत है, फिर फल प्रकाश से पालन क्यों कहा? ब्रह्मविद्या से सद्यः मोक्ष होता है, वहाँ विलम्ब नहीं, यानी ब्रह्मविद्या को तो अब जाना, और फल मिले कालान्तर में, ऐसी बात नहीं है।

समाधान—ब्रह्मविद्या के श्रवण से पहले तो परोक्षज्ञान होता है, पीछे मनन, निदिध्यासन, तत्त्वं पदार्थ शोधन से तथा महावाक्य की कृपा से जीवब्रह्म की अखण्डैकरसता के अनुभव से मोक्षफल होता है। यह मन्त्रखण्ड परोक्ष ज्ञानियों की अपेक्षा से कहा है। प्रयोजन यह है कि जिनको ब्रह्म का परोक्ष ज्ञान हुआ है, उनको परमात्मा ब्रह्मविद्या का मोक्षरूप फल प्रकाशित करके उनका पालन करें।

सह वीर्यम् करवावहै— हम साथ-साथ विद्या-प्राप्ति में वीर्य यानी सामर्थ्य, पुरुषार्थ करें। आचार्य अपने मुखारविन्द से अध्यापन करायें, तथा शिष्य अध्ययन करे। ये दोनों कार्य एक काल में साथ-साथ होते हैं।

तेजस्वि नौ अधीतम् अस्तु—हम दोनों का जो अध्ययन तथा अध्यापन किया हुआ हो। वह तेजस्वी अर्थात् वीर्यवान हो। जो अध्ययन श्रद्धा से और विधिपूर्वक किया जाता है वह वीर्यवान होता है। प्रयोजन यह है कि आचार्य का अनुग्रह बना रहे और शिष्य की श्रद्धा बनी रहे जिससे कि पठन पाठन सुदृढ़, बलवान, संशयरहित बन सके।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मा विद्विषावहै—हम आचार्य और शिष्य परस्पर द्वेष न करें। आचार्य के अध्यापन संबंध में अन्याय यानी प्रमाद अथवा शिष्य के अध्ययन में प्रमाद के कारण हम एक दूसरे से द्वेष न करें। अति समीपता के कारण गुरु और शिष्य के व्यक्तिगत दोष दृष्टि में आते हैं। शिष्य की दृष्टि में जो गुरुगतदोष हों, उनके कारण शिष्य में गुरु के प्रति अध्ययन संबंध में द्वेष न हो, और गुरु में भी विरक्ति न हो। इन विघ्न बाधाओं को जानने वाले सर्वज्ञ वेदभगवान ने शान्तिपाठ कहा है।

ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!—शान्ति शब्द का तीन बार उच्चारण आध्यात्मिक—देह के रोग अथवा कामक्रोधादि से मनोव्यथा, आधिदैविक—यक्षगन्धर्वराक्षसादि से उत्पीड़न, तथा आधिभौतिक—सिंहसर्पादि, जलबाढ़भू-कम्पादि से कष्ट, सम्पूर्ण त्रितापों की शान्ति के लिये किया गया है। 'शान्तिः शान्तिः पुनः शान्तिर्दोषत्रयनिवृत्तये। कृत्वैव प्रार्थनामात्मज्ञानार्थं पुनरास्तिकाः'॥ सूतसंहिता ४।१६।७

हे आस्तिको! तीन बार 'शान्ति' शब्द का उच्चारण त्रितापों के उपशमन के लिये किया जाता है। तीन बार शान्तिपद उच्चारण करके ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रार्थना करो। शान्तिपाठ के उपरान्त मुख्य ग्रन्थ, कैवल्योपनिषद, आरम्भ होता है।

अथ कैवल्योपनिषत्

अथाऽऽश्वलायनो भगवन्तं परमेष्ठिनमुपसमेत्योवाच :—

अधीहि भगवन् ब्रह्मविद्यां वरिष्ठां
सदा सद्भिः सेव्यमानां निगूढाम्।
ययाऽचिरात्सर्वपापं व्यपोह्य
परात्परं पुरुषं याति विद्वान्॥१॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अर्थ—अथ आश्वलायन नाम का विद्वान परमेष्ठी भगवान चर्तुमुख ब्रह्मा जी के पास विधिपूर्वक जाकर बोला—हे भगवन् ! आप मुझे ब्रह्मविद्या का श्रवण कराओ जो सब विद्याओं में श्रेष्ठ, सज्जनों से सेवनीय, और निगूढ़ है। ब्रह्मविद्या से तत्काल सर्वपाप नष्ट करके विद्वान् माया से भी सूक्ष्म ब्रह्म को प्राप्त होता है।

व्याख्या—अथ-वेद भगवान 'अथ' शब्द से मंगलाचरण करते हैं। "ॐ" और "अथ" ये दोनों पद मंगलवाची हैं, 'ओंकारश्चाथ-शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्माङ्ग-लिकावुभौ॥' ॐ तथा अथ ये दोनों पद ब्रह्माजी के कंठ से पहले निकले थे, इसलिये दोनों मंगलदायी हैं। 'अथ' पद विषयान्तर का भी द्योतक है। कर्मकाण्ड और उपासना के उपरान्त यानी जिन्होंने रुद्र के शतमन्त्रों का पाठ करके पापदहन कर लिये हैं, उनके लिये अब ज्ञानसंबंध में बताते हैं, यानी विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति तथा मुमुक्षता ज्ञानसाधनचतुष्टय से युक्त साधकों के लिये ब्रह्मज्ञान का नवीन विषय आरम्भ होता है। **आश्वलायनः भगवन्तम् परमे-ष्ठिनम् उप-समेत्य उवाच**—अश्वल का पुत्र आश्वलायन, ऋग्वेदाचार्य, भगवान परमेष्ठी गुरु ब्रह्माजी के पास विधिपूर्वक, आकर बोले। ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेज—भगवान के ये छः स्वाभा-विक गुण होते हैं। परम यानी आत्मा में जिसका निवास हो, वह परमेष्ठी, सृष्टिकर्ता, चतुर्मुख ब्रह्माजी। सद्गुरु के पास विधिपूर्वक किस प्रकार जाना होता है ? मुण्डक श्रुति १।२।१२ इस प्रकार कहती है 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।' उस नित्य वस्तु का साक्षात् ज्ञान प्राप्त करने के लिये हाथ में समिधा का भार लेकर श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जाये।

समिधा ले जाने में क्या विशेषता है ? ऋषि लोग यज्ञ करते थे, उन्हें समिधा की आवश्यकता पड़ती थी। उनको वन में से लकड़ी कटवाना, फाड़ना, एक माप की काटना, सुखाना आदि क्रियाओं में

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कष्ट होता था। यदि कोई समिधा भार उनको समर्पण करता तो ऋषियों को प्रसन्नता होती थी। प्रयोजन यह है आचार्यों को आवश्यक वस्तु अर्पण करनी चाहिये, जिससे कि उनके चित्त में हर्ष हो, हर्ष होने पर गुरु लोग कृपा करते हैं, और शिष्य का अभीष्ट सिद्ध करते हैं। तात्पर्य यह है कि गुरु के पास नम्रतापूर्वक निरहंकार होकर जाये। नीति के भी वचन हैं कि गुरु, ब्राह्मण, राजा, वैद्य, ज्योतिषी के पास खाली हाथ न जाये।

अधीहि भगवन् ब्रह्मविद्याम् वरिष्ठाम्—हे भगवन्! प्रभो! अज्ञाननाश में समर्थ, आप समाधि अवस्था को त्याग कर मेरे ऊपर अनुग्रह करने के लिये ब्रह्मविद्या का स्मरण करो, यानी ब्रह्मविद्या का श्रवण कराओ, निरूपण करो। जिस उपाय से देश-काल-वस्तु-परिच्छेद-रहित, सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द लक्षण वाले ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार हो सके, उसका नाम ब्रह्मविद्या है। जिस विद्यासे ब्रह्म का ज्ञान हो सके, उसे ब्रह्मविद्या कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जो अपने स्वरूप में समाहित होते हैं, उन्हें बोलने में भी खेद होता है, अतः हे भगवन्! मुझ अधिकारी पर उपदेशरूप कृपा करने के लिये आप समाहितता के स्तर से चित्त को नीचे उतारो और मुझे उपदेश दो। समाधिस्थ चित्त वाले तत्त्ववेत्ताओं को आलसीधुरीण कहते हैं, क्योंकि उनको पलक झंपने के व्यापार से भी खेद होता है।

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।
तस्यालस्यधुरीणस्य सुखं नान्यस्य कस्यचित्॥
(अष्टावक्रगीता १६।४)

जो नेत्र खोलने और मूंदने के व्यापार में भी खेद (क्लेश) मानता है, उस आलसियों में सर्वप्रथम जीवन्मुक्त महात्मा के सुख के सदृश अन्य किसी का सुख नहीं है।

यहाँ एक अनुभव भी लिखते ह। श्रीगुरुदेव अपने ऊँचे आसन पर बैठे थे। प्रदोषकाल का सामान्य सा अन्धेरा था। श्रीगुरुदेव

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

समाधिस्थ हो गये, मुझे भान न हुआ। मैं नीचे बैठा था। नीरवता को भंग करते हुए मैंने पूछा, ,गुरुदेव गायत्रीमंत्र का सही अर्थ क्या है ?' कुछ क्षणों के उपरान्त श्रीगुरुदेव बोले, और उनके स्वर में कम्पन और दूरस्थता सी थी मानों कोई स्वर कूपगह्वर से निकला हो, 'मुझे कितनी ऊँची स्थिति से उतरना पड़ा है, तुम्हारे घटिया से प्रश्न का उत्तर देने के लिये।' मैं अपराधीवत् स्तंभित सा हो गया।

वह ब्रह्मविद्या कैसी है ? वरिष्ठ, सर्वश्रेष्ठ। भगवान् कृष्ण-चन्द्र ने गीता में कहा है, 'अध्यात्मविद्या विद्यानाम्।' १०।३२। विद्याओं के मध्य में मैं ब्रह्मविद्या हूँ। मुण्डक श्रुति १।४-५। में दो प्रकार की विद्या बताई हैं—परा, अपरा। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद (चारों वेद) शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद ज्योतिष (छः वेदांग)—ये दश अपरा विद्या हैं। 'अथ परा यया तदक्षर-मधिगम्यते।' जिस विद्या से उस अक्षर परमात्मा का ज्ञान हो वह परा विद्या कहलाती है। पराविद्या का ही दूसरा नाम ब्रह्मविद्या है। अतः यह सर्वश्रेष्ठ है। ब्रह्मविद्या के और क्या विशेषण हैं ?

सदा सद्भिः सेव्यमानाम् निगूढाम्—सज्जनों से सदा सेवनीय और निगूढ़ ब्रह्मविद्या को आप कहें। सदा अर्थात् जब तक ब्रह्म-साक्षात्कार न हो तब तक, स्नान भोजन की भी अवहेलना करके। सज्जनों से यानी अपने कल्याण की इच्छा वालों से, आत्मदर्शन द्वारा मोक्ष की अभिलाषा वालों से, दुर्जनों से नहीं, क्योंकि दुर्जनों का मन वासनाओं से कलुषित और अशुभकर्मों से मलिन रहता है, सदा प्रयत्नपूर्वक सेवनीय, अभ्यसनीय ब्रह्मविद्या का आप उपदेश करें। 'सेव्यमानाम्' शब्द से ध्वनित होता है कि ब्रह्मविद्या चिरकाल तक आदरपूर्वक स्वप्रयत्न यानी श्रवण-मनन-निदिध्यासन से प्राप्य है। ब्रह्मविद्या की एक अन्य विशेषता यह है कि यह वेदमहासागर में छिपी हुई है। सद्गुरु ही इस का उद्धार करके

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शिष्य को उपदेश कर सकते हैं। वेदों में कर्मकाण्ड, उपासना, द्वैत, अद्वैतादि विभिन्न विषयों पर वचन मिलते हैं। षट्शास्त्रकारों ने अपने अपने सिद्धान्तों को वेदप्रमाण पर ही आधारित किया है। वेदशास्त्र का सही तात्पर्य जानना अतिकठिन है, अतः ब्रह्मविद्या को निगूढ़ कहा है। ब्रह्मा जी ब्रह्मविद्या के प्रधान सर्वज्ञ आचार्यों में हैं। वे ही निगूढ़ ब्रह्मविद्या को प्रकाशित करने में समर्थ हैं, क्योंकि चारों वेद ही उनके चार मुख हैं।

ब्रह्मविद्या की वरिष्ठता तथा निगूढ़ता वताकर अब उसका प्रभाव वताते हैं। **यया अचिरात् सर्वपापम् व्यपोह्य**—जिस ब्रह्मविद्या के प्रभाव से ब्रह्मसाक्षात्कार करने वाला विद्वान् सब पापों को तत्काल नाश करके, पाप के साथ पुण्य भी जोड़ना चाहिये जैसा कि आगे कहेंगे, 'न पुण्यपापे' मुझ तत्त्ववेता को पुण्य पाप नहीं लगते, क्योंकि पुण्यपाप देहाभिमानियों को होते हैं, तत्त्ववेत्ता का देहाध्यास गलित हो जाता है, अथवा पाप का अर्थ आप अज्ञान और उसका कार्य भी ले सकते हैं यानी ब्रह्मविद्या की प्राप्ति से अज्ञान नष्ट करके **परात् परम् पुरुषम् याति विद्वान्**—अव्याकृत माया, अज्ञान से भी परम यानी सूक्ष्म, उत्कृष्ट, औपनिषद पुरुष यानी आत्मा को, हृदयरूपी पुर, गुहा में शयन करने वाला पुरुष, समस्त भुवनों को पूर्ण करने वाला पुरुष, ब्रह्म को प्राप्त होता है, कब ? तत्काल। तात्पर्य यह है कि आत्मसाक्षात्कार होते ही तत्काल पाप-समुदाय नष्ट हो जाता है, विलम्ब नहीं होता। 'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः।' पाप कर्म के क्षय होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। कौन आत्मा को प्राप्त होता है ? विद्वान्—'मैं ब्रह्म हूँ, देह नहीं हूँ', इस प्रकार आत्मा का साक्षात्कार करने वाला विद्वान् ब्रह्म को प्राप्त होता है 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' इति मुण्डक श्रुति ३।२।९ ब्रह्म को अनुभव से जानने वाला ब्रह्म ही होता है।

वेद भगवान आस्तिकों में श्रद्धा उपजाने के लिये आख्यायिका के अवतरण से ब्रह्मविद्या विवेचन आरम्भ करते हैं। आश्वलायन

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नाम के किसी विद्वान ने चतुर्मुख ब्रह्माजी के पास विधिपूर्वक पहुँच कर ब्रह्मविद्या निरूपण के लिये प्रार्थना की। तब अधिकारी जान कर ब्रह्माजी ने उसकी उपेक्षा नहीं की, वरन् उसके प्रश्न का उत्तर दिया। ब्रह्माजी यह जानते हैं कि ब्रह्मविद्या अनुभव का विषय है, वाणी का नहीं है, अतः वे पहले ब्रह्मविद्या के साधन बताते हैं—

तस्मै स होवाच पितामहश्च
श्रद्धा-भक्ति-ध्यानयोगादवैहि।
न कर्मणा न प्रजया धनेन
त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥२॥

अर्थ—यह सुनकर पितामह ब्रह्माजी ने आश्वलायन को कहा—श्रद्धा, भक्ति, ध्यान योग से ब्रह्मविद्या को जानो। यह विद्या कर्म से, सन्तान से, धन से प्राप्य नहीं है। इनके त्याग से महात्माओं ने अमृतत्व को प्राप्त किया।

व्याख्या—तस्मै स ह उवाच पितामहः च—इस प्रकार पूछने पर सर्वज्ञ गुरु ब्रह्माजी ने, ऐसा इतिहास है, अपने शिष्य, ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु आश्वलायन को उत्तर दिया। जगत् के पिता दक्षादिकों के भी पिता होने से ब्रह्माजी को पितामह कहा जाता है। चकार पदपूर्ति के लिये है, अथवा चकार को 'भी' के अर्थ में भी लिया जा सकता है यानी जैसे आश्वलायन ने पूछा, वैसे ही ब्रह्माजी ने भी उत्तर दिया। आश्वलायन के प्रश्न की अवहेलना नहीं की। **श्रद्धा-भक्ति-ध्यान-योगात् अवैहि**—ब्रह्मविद्या साक्षात् नहीं कही जा सकती, क्योंकि शुद्ध ब्रह्म मनवाणी का विषय नहीं है, मौनरूप होने से, 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।' इति तैत्तिरीय श्रुति २।४।

मन और वाणी ब्रह्म को बिना प्राप्त किये वापिस लौट आते हैं, अतः ब्रह्माजी उसकी प्राप्ति के उपाय बताते हैं। श्रद्धा—आचार्य और शास्त्रों की वाणी में विश्वास का नाम श्रद्धा है। 'निगमाचार्य-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता ।।८।। अपरोक्षानुभूति ।। ज्ञान का एक साधन तो श्रद्धा हुआ, क्योंकि गीता में भगवान् ने भी कहा है 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' ।। ४।३९।। श्रद्धावान को ज्ञान लाभ होता है। ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष हो सकता है, इसका त्रिकाल में भी अन्य कोई उपाय नहीं, ज्ञानमार्ग ही अपनाना श्रेयस्कर है, इस प्रकार के दृढ़, अडिग विश्वास का नाम श्रद्धा है।

साधारणतः श्रद्धा षट्सम्पत्ति साधन का एक अंगमात्र है, परन्तु श्रद्धा का महत्त्वपूर्ण स्थान होने से इसको ब्रह्माजी ने स्वतंत्र रूप से कहा है। यहाँ श्रद्धा उपलक्षण से कहा है, इससे विवेक वैराग्यादि चारों ज्ञानसाधन समझना।

अब मन्द मुमुक्षुओं के लिये भक्ति साधन बताते हैं **भक्ति**—आस्तिकबुद्धि, 'मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी। स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते ।। विवेकचूडामणिः ३२ ।। मन्द मुमुक्षुओं के लिये मुक्ति की कारणरूपा सामग्री में भक्ति ही सब से बढ़ कर है। अपने स्वरूप का यानी आत्मतत्त्व का अभेद निर्गुण उपासना के माध्यम से, अनुसन्धान करना भक्ति कहलाता है। भगवान् भाष्यकार आगे लिखते हैं 'स्वात्मतत्त्वानुसन्धानं भक्तिरिति अपरे जगुः ।।' अन्य आचार्य अपने स्वरूप के तत्त्व का, सगुण उपासना के माध्यम से, अनुसंधान भक्ति कहते हैं। प्रयोजन यह है कि निर्गुण अथवा सगुण अभेद भक्ति से भी दीर्घकाल में ज्ञान की उपलब्धि हो सकती है। अपने इष्टदेव के 'सच्चिदानन्द' लक्षणों का अवतरण जब भक्त में हो जाता है, तब मोक्ष होता है।

ध्यानयोगात्—तीसरा साधन ध्यान योग बताया है। विजातीय तत्त्वों का निराकरण और सजातीय तत्त्वों का प्रवाह—इस प्रकार अभ्यास करने से ब्रह्म लक्ष्य में ध्यान की योग्यता प्राप्त हो जाती है, ध्यान किसे कहते हैं ? 'ब्रह्मैवास्मीति सद्वृत्त्या निरालम्बतया

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्थितिः । ध्यानशब्देन विख्याता परमानन्ददायिनी ।।' तेजोबिन्दूपनिषत् श्रुतिः 'मैं ब्रह्म ही हूँ' इस प्रकार निरालम्ब वृत्ति की स्थिति को ध्यान शब्द से कहते हैं। यह ध्यान वृत्ति (एकाग्र वृत्ति) परम आनन्द देने वाली है। जब वृत्ति विना किसी दृश्य विषय (आकाश, सूर्यादि) का आश्रय लिये ही एकाग्र होती है, तब उसे निरालम्ब वृत्ति कहते हैं। ध्येय वस्तु में मन का प्रतिष्ठित होना ध्यान कहलाता है। ध्येय वस्तु में वृत्ति की एकतानता होना ध्यान कहलाता है। कुछ आचार्यों के मत में ध्यान रुक रुक कर जमता है, यदि वह दृढ़ हो जाये तो फिर समाधि कहलाता है। **अवैहि**—ब्रह्मविद्या को जानो। श्रद्धा तो भक्तियोग और ध्यानयोग दोनों में समानरूप से रहती है। भक्तियोग कोमल रसिक हृदय वालों के लिये उपयुक्त, और ध्यानयोग में कड़ा हठी साधक होना चाहिये। भक्ति से तथा ध्यानयोग से पराविद्या को जानो।

सूतसंहिता में ध्यानयोग को, ध्यान और योग दो भिन्न साधन बताये हैं। वह योग क्या है? इसी उपनिषद् में 'विविक्तदेशे च सुखासनस्थः' आदि मन्त्रों से आगे बतायेंगे। यह राजयोगियों का योग है, यानी जिनके कषाय क्षीण हो चले हैं, उनके लिये यह योग है, यहाँ अष्टांगयोग से प्रयोजन नहीं है। राजयोग में ब्रह्मध्यान से प्राण नियंत्रित होते हैं, पातंजलयोग में प्राण नियंत्रण से मन नियंत्रित होता है। इतना अन्तर समझ लेना चाहिये, जिनके कषाय अभी किंचित् पके हैं, वे हठयोग का भी आश्रय ले सकते हैं।

न कर्मणा, न प्रजया, धनेन—ब्रह्मविद्या यज्ञादि कर्मों से नहीं प्राप्त हो सकती, क्योंकि शास्त्रसम्मत वर्णाश्रमधर्मकर्मानुष्ठान से अन्तःकरण की शुद्धि होती है, ज्ञान नहीं होता। न सन्तान से और न ही धन-बल से अमृतत्व प्राप्त होता है। कर्मजनधनबल से मोक्ष नहीं होता। मोक्षपद में श्रुति ने इनका निवारण किया है। 'योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वा आत्मशुद्धये।' गीता ५।११ योगीजन

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कर्मफल में ममत्वबुद्धि त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं। 'अमृतत्वस्य नाशास्ति वित्तेन।' इति बृहदारण्यक-श्रुति २।४।२। धनसाध्य कर्म से मोक्ष की आशा नहीं। जन-वल से भी यानी पुत्रपौत्रादि के पुरुषार्थ से भी मोक्ष नहीं होता।

ऋणमोचनकर्त्तारः पितुः सन्ति सुतादयः।
वन्धमोचनकर्त्ता तु स्वस्मादन्यो न कश्चन ।।५३।।
—विवेकचूडामणिः

पिता के ऋण को चुकानेवाले तो सुतादि भी हो सकते हैं, परन्तु अज्ञानवंध से छुटानेवाला अपने से भिन्न और कोई नहीं होता।

तो ब्रह्मविद्या कैसे मिले? **त्यागेन एके अमृतत्वम् आनशुः**—कर्म, परिवार, धन इनके त्याग से एके—मुख्य महात्माओं ने अविद्यादि रूपी मरण से छुटकारा पाया है। तात्पर्य यह है ज्ञानसाधक को ऐषणात्रय छोड़नी पड़ेगी, इनके त्याग यानी समस्त श्रौतस्मार्तकर्मफल त्याग से ब्रह्मविद्या प्राप्ति द्वारा अमरत्व, मोक्षपद प्राप्त किया जाता है। 'संन्यस्य सर्वकर्माणि भवबन्धविमुक्तये।' १० विवेकचूडामणिः भवबन्ध से छूटने के लिये सब कर्मों का त्याग करके मुमुक्षु यत्न करे ।।२।।

परेण नाकं निहितं गुहायां
विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति।
वेदान्तविज्ञान-सुनिश्चितार्थाः
संन्यास-योगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले
परामृतात्परिमुच्यन्ते सर्वे ।।३।।

अर्थ—परमानन्दरूप ब्रह्म बुद्धिरूपी गुफा में छिपा हुआ स्वयं प्रकाशित होता है जिसमें कि यतिजन प्रवेश करते हैं। जो उपनिषदों

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

के विशिष्ट ज्ञान से निश्चित अर्थवाले, सर्वकर्मसंन्यास से शुद्ध अन्तः-करणवाले यत्नशील मुमुक्षु हैं, वे सव अज्ञान का नाश होने पर, अमृतत्व के साधन ब्रह्मविद्या से ब्रह्म में प्रतिष्ठित होकर सर्वप्रकार के वंधनों से छूट जाते हैं।

व्याख्या—ब्रह्मविद्या प्राप्ति के साधन वता कर अब ब्रह्म का अनुसन्धान-स्थल बताते हैं। उस ब्रह्म को कहाँ खोजा जाये? **परेण नाकम्**—परम आनन्दात्मक ब्रह्म, कं का अर्थ सुख, अकं यानी जो सुख न हो अर्थात् दुःख, न—अकं, नाकं सुख, परम सुखरूप अथवा नाक स्वर्ग को भी कहते हैं, स्वर्ग सुख से अधिक गम्भीर सुखरूप, स्वर्गसुख ब्रह्मानन्दका आभासमात्र होता है, **निहितम् गुहायाम् विभ्राजते**—वह ब्रह्म अज्ञानगह्वर यानी बुद्धिरूपी गुफा में छिपा हुआ प्रकाशित होता है, उसको वहीं खोजना चाहिये। क्या सर्वव्यापी ब्रह्म बुद्धि से बाहर नहीं है? ब्रह्म अनन्त होने से सर्वत्र विराजमान है। ब्रह्म समस्त विश्व को सामान्य प्रकाश से प्रकाशित करता है, परन्तु शरीर संघात दो द्रष्टाओं से प्रकाशित होता है। एक तो ब्रह्मविम्ब के सामान्य प्रकाश से और दूसरे ब्रह्म के प्रतिबिम्ब के प्रकाश से। अन्तःकरण पाँच महाभूतों के सत्त्वांश से निर्मित है, अतः वह स्वच्छ है। वह चैतन्य बिम्ब के प्रकाश को ग्रहण करके प्रतिबिम्बित करता है, और समस्त प्राण, इन्द्रियगण तथा देह को चेतनीभूत करता है। बाह्य देवप्रतिमाओं पर ध्यान जमाने में भी अन्तःकरण में ही देखना पड़ता है। बाह्य आकार भीतर जा कर ही अनुभूत होते हैं, अतः ब्रह्म बुद्धिरूपी गुफा में स्वयं प्रकाशित होता है, और 'अहं अहं' करके स्फुरित होता है, उसको वहीं खोजना चाहिये।

यत् यतयः विशन्ति—इसी ब्रह्म में यति लोग यानी मोक्ष के लिये यत्नशील प्रवेश करते हैं। क्या ब्रह्म में कोई छिद्र है जिसमें चूहे की भाँति विवर में यतिजन प्रवेश कर सकें? ब्रह्म में खण्ड नहीं हैं वह निर्विकार, एकरस, अनन्त सत्तावाला है, उसमें प्रवेश करने का अर्थ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

है कि अज्ञान दूर होने पर वे अपने को ही ब्रह्म जानते हैं, ब्रह्म साक्षात्कार होने पर उनका ब्रह्म के साथ अखण्डैकरस तादात्म्य हो जाता है, यही ब्रह्म में प्रवेश करना कहलाता है। यहाँ तक ब्रह्म का अनुसन्धान स्थल बताया।

अब अधिकारी निरूपण करते हैं **वेदान्त-विज्ञान सुनिश्चितार्थाः**—वेद के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते हैं यानी उपनिषद्, उनका विशेष ज्ञान, विज्ञान, वह क्या? वेदों का तात्पर्य अद्वैत ब्रह्म प्रतिपादन करने में है, वह ब्रह्म मन, वाणी का अविषय होने से अनुभव प्रमाण से जाना जाता है। वह ब्रह्म तू ही है, तू ही अज, अजर, अमर, अविनाशी, असंग, निर्विकार, अव्यय, सत्-चित्-आनन्द ब्रह्म है। यह अनुभव तत्त्वमसि महावाक्य के अर्थ सिद्ध होने पर होता है—इस प्रकार के विशेष अर्थ यानी ज्ञान में जिनका निश्चय सुदृढ़ है वे वेदान्त-विज्ञान सुनिश्चितार्थ कहलाते हैं। ऐसी स्थिति किस प्रकार प्राप्त होती है?

संन्यासयोगात्—सर्व श्रौत स्मार्त लौकिक कर्मफलों में आसक्ति त्याग कर, सर्वकर्मसंन्यास के योग यानी सहायता, अभ्यास से **शुद्ध-सत्त्वाः यतयः**-शुद्ध अन्तःकरणवाले जो मोक्षाभिलाषी शास्त्रमार्ग से तथा गुरूपदिष्ट मार्ग से पुरुषार्थरत यत्नशील व्यक्ति हैं, वे। कर्म-फल त्याग से अन्तःकरण शुद्ध होता है। उपासना से अन्तःकरण स्थिर होता है, तथा ज्ञान श्रवण से अन्तःकरण सूक्ष्म होता है, अतः शुद्धसत्त्व कहने से स्थिर तथा सूक्ष्म अन्तःकरण भी समझ लेना। सुनिश्चितार्थ, संन्यासयोग से शुद्ध अन्तःकरणवाले जो यति हैं।

ते ब्रह्मलोकेषु पर-अन्तकाले पर-अमृतात्—अब ब्रह्म ज्ञान का फल बताते हैं। वे पर-अन्त-काले-भूतभौतिक प्रपंच की अपेक्षा से परम सूक्ष्म यानी भूतभौतिक प्रपंच का कारण अज्ञान, उस अज्ञान के अन्त, विनाश काल में यानी अज्ञान के नष्ट होने पर, निरतिशय अमृतत्व अमरण-धर्म के साधन ब्रह्मज्ञान से, **ब्रह्मलोकेषु**—जो देखा जाये वह लोक, ब्रह्म

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ही है लोक, धाम, लक्ष्य, वह ब्रह्मलोक। उस ब्रह्म के साक्षात् दर्शन होने पर, साधकों की बहुलता से ब्रह्मलोक का बहुवचन दिया गया है **परिमुच्यन्ते सर्वे**—परि-चारों ओर से, सब संसार के बन्धनों से जीते-जी ही वे सब मुक्त हो जाते हैं, वे लोकान्तरों में नहीं जाते। यहीं रहते हुए ही ज्ञान से अज्ञान की उपाधि नष्ट होने पर अपरिच्छिन्न ब्रह्म का सेवन करते हैं। जैसे घट की दीवार टूटने से घटाकाश ही महाकाश हो जाता है, ऐसे ही अज्ञान विनाश होने पर जीवरूप से भासनेवाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' इति मुंडकश्रुति। ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही होता है ।।३।।

विविक्तदेशे च सुखासनस्थः
शुचिः समग्रीवशिरः शरीरः ।।४।।

अर्थ—एकान्त पवित्र देश में सुख से आसन पर बैठ कर, बाह्य-भीतर से पवित्र हो कर ग्रीवा, शिर तथा शरीर को एक समान सीधा करके—(अगले मंत्र से संबंध जोड़ो)।

व्याख्या—गुहानिहित परमात्मा को प्रकाशन करने के लिये ध्यान-योग बताते हैं। **विविक्तदेशे च**—पहले स्थान बताते हैं। एकान्त स्थान में ; शब्द, चक्षुपीड़न करनेवाला प्रकाश, जलप्रपात, पत्थर कंकर, मच्छर, कीड़ी, दंशादि से रहित देश में। देश बता कर अब आसन बताते हैं।

सुखासनस्थः—सुखपूर्वक आसन पर बैठ कर, जिस आसन पर पैर-पिड़ायें वह सुखासन नहीं होता, खड़े-खड़े अथवा चलते-फिरते अथवा लेट कर ध्यान नहीं लगाया जाता। भगवान् कृष्ण ने गीता में ध्यान के लिये इस प्रकार आसन बताया है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।।६।११।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शुद्ध भूमि में आसन लगाये। सब से नीचे कुशासन, उसके ऊपर मृगछाला विछाये, उसके ऊपर वस्त्र विछाये। यह आसन न तो अति ऊँचा हो और न अति नीचा हो। उस पर स्थिर वैठ कर ध्यान करे।

ध्यान के लिये अधिकतर पद्म, सिद्ध, सुख, अथवा स्वस्तिक आसन लगाया जाता है, परन्तु अपरोक्षानुभूति ग्रंथ में भगवान् शंकराचार्य ने कहा है—

सुखेनैव भवेद् यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम्।
आसनं तद्विजानीयान्नेतरत्सुखनाशनम् ॥११२॥

जिस आसन में सुखपूर्वक निरन्तर ब्रह्मचिन्तन हो सके, उसे ही सुखासन जानना चाहिये, सुखनाशकर्ता दूसरा आसन आसन ही नहीं है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि देशकालासनादि ज्ञान के सहकारी यानी सहायता देनेवाले गौण कारण हैं, मुख्य नहीं हैं। उद्दालक मुनि ने पत्तों का ही आसन लगाया था। योगवासिष्ठ में उसकी कथा आती है। **शुचिः**—बाह्य तथा भीतर से पवित्र, अहंकार-वासना का त्याग भीतरी शुचिता है, स्नानादि से बाह्य पवित्रता होती है। पवित्र होकर ध्यान के लिये आसन पर वैठे। **सम-ग्रीव-शिरः-शरीरः**—जिसका शरीर ग्रीवा तथा सिर एक समान सीधे हों वह समग्रीव-शिरःशरीर कहलाता है, तीनों अंगों को सम करके सुखासन पर ध्यान के लिये बैठे ॥४॥

अत्याश्रमस्थः सकलेन्द्रियाणि
निरुध्य भक्त्या स्वगुरुं प्रणम्य।
हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं
विचिन्त्य मध्ये विशदं विशोकम् ॥५॥

अर्थ—(पिछले मंत्र से संबंध जोड़ो) परमहंस संन्यासी, अथवा साधनसम्पन्न मुमुक्षु सब इन्द्रियों का दमन कर, भक्तिपूर्वक अपने

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

गुरु को प्रणाम करके विक्षेपरहित विशुद्ध हृदय कमल में निर्मल आनन्द-स्वरूप ब्रह्म का चिन्तन करके—(अगले मंत्र से संबंध जोड़ो)।

व्याख्या—अत्याश्रमस्थः—अति आश्रमवान, यानी ब्रह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ, तथा कुटीचक, बहूदक और हंस इन आश्रमों का अतिक्रमण करके यानी परमहंस। संन्यासी चार प्रकार के होते हैं, 'चतुर्विधा भिक्षवश्च, बहूदककुटीचकौ। हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः॥' बहूदक, कुटीचक, हंस और परमहंस—ये चार प्रकार के भिक्षु हैं। इनमें से जो-जो पीछे वाला है वह उत्तरोत्तर उत्तम है, इस प्रकार स्मृति कहती है।

यदि कैवल्योपनिषद् संन्यासियों के लिये ही है, तो ब्रह्मचारी, गृहस्थाश्रमी इत्यादि क्या करेंगे? संन्यास भी दो प्रकार का होता है। एक तो संसार छोड़ कर गुरु से प्रैषमंत्र सुन कर दंड, कमण्डलु, काषायवस्त्र धारण कर, शिखा सूत्र त्याग कर संन्यासाश्रम नाम का आश्रम धारण करना, और दूसरा कुछ बाधाओं के कारण, जैसे माता-पिता की आज्ञा न मिलना, कई साधक संन्यासाश्रम तो धारण नहीं करते, परन्तु पुनर्जन्मोत्पादक कर्मों को न करते हुए गुरु से ब्रह्मज्ञान श्रवण करके और मनन निदिध्यासन द्वारा आत्मसाक्षात्कार करते हैं। वे भी गुप्त संन्यासी ही होते हैं। राजा जनक, शिखिध्वज, दशरथ, विभीषण, अज़ातशत्रु तथा तुलाधार वैश्य इत्यादि गृहस्थाश्रम में ही ब्रह्मवेत्ता महात्मा हुए हैं। संन्यासाश्रम धारण करने से ही ब्रह्मविद्या प्राप्त होगी ऐसा नियम नहीं है। भगवान् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वेदव्यासादि को बिना संन्यास लिये ही ब्रह्मज्ञान है।

इस सम्बन्ध में विद्यारण्यमुनि के जीवन्मुक्ति ग्रंथ में से वचन उद्धृत करते हैं, 'अयं च वेदनहेतुः संन्यासो द्विविधः, जन्मापादक-काम्यकर्मादित्यागमात्रात्मकः, प्रैषोच्चारणपूर्वकदण्डधारणाद्याश्रम-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रूपश्च इति।' (जीवन्मुक्तिप्रमाणप्रकरण) ज्ञान का हेतु यह संन्यास दो प्रकार का होता है। (१) जन्म देनेवाले काम्यकर्मादिकों का त्याग-मात्र रूपवाला संन्यास तथा (२) प्रैष मंत्र का पहले उच्चारण करके दण्ड धारणादि संन्यासाश्रम रूपवाला संन्यासाश्रम। 'ब्रह्मचारि-गृहस्थ-वानप्रस्थानां केनचिन्निमित्तेन संन्यासाश्रम-स्वीकारे प्रतिबद्धे सति, स्वाश्रमधर्मेष्वनुष्ठीयमानेषु अपि वेदनार्थो मानसः कर्मादि त्यागो न विरुध्यते, श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणेषु लोके च तादृशां तत्त्वविदां बहूनामुपलंभात्।' (जीवन्मुक्तिप्रमाणप्रकरण) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थों के लिये, जो कि किसी कारणवश संन्यासाश्रम धारण नहीं कर सकते, अपने अपने वर्णाश्रमधर्म के कर्मानुष्ठान करते हुए भी ज्ञान प्राप्ति के लिये, मानसिक कर्मादि फल त्याग कोई विरोधी नहीं है; क्योंकि श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणों में तथा लोक में उस प्रकार के बहुत से ब्रह्मवेत्ताओं के उदाहरण मिलते हैं।

जिज्ञासुर्ज्ञानवांश्चेति परमहंसो द्विधा मतः ।।१२।।
—जीवन्मुक्तिविवेक, प्रथमप्रकरण

परमहंस दो प्रकार का होता है। एक तो ज्ञान की इच्छावाला, और दूसरा स्वयं ज्ञानवान। यह कैवल्योपनिषद् जिज्ञासु परमहंसों के लिये है, ज्ञानवान परमहंसों के लिये नहीं। तात्पर्य यह है कि पूजनीय संन्यासाश्रम में स्थित अथवा विवेकवैराग्यादि साधनचतुष्टय-सम्पन्न व्यक्तियों के लिये ब्रह्माजी ने यह ज्ञान कथन किया है। पूर्वोक्त साधनों से सम्पन्न स्त्रियाँ भी इसकी अधिकारिणी हैं।

यदि ब्रह्माजी का प्रयोजन ब्रह्मज्ञान का अधिकार केवल संन्यासियों तक ही सीमित करना होता तो ऋग्वेदाचार्य आश्वलायन को इसका उपदेश क्यों देते, क्योंकि आश्वलायनजी तो संन्यासी नहीं थे। पराशर स्मृति तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार तो कलियुग में संन्यास वर्जित है, परन्तु सब आचार्यों का ऐसा मत नहीं है—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैतृकम् ।
देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पंच विवर्जयेत् ।।
ब्रह्मवैवर्त पुराण श्रीकृष्णजन्मखंड ११६।११२

कलियुग में ये पाँच वर्जित हैं—अश्वमेध, गोमेध यज्ञ, संन्यास, मांसपिण्ड से श्राद्ध तथा देवर से पुत्रोत्पत्ति ।

सकलेन्द्रियाणि निरुध्य—ध्यान के लिये तत्पर साधक के लिये इन्द्रियों की स्थिति बताते हैं । समस्त ज्ञानेन्द्रियों को मनसहित रोक कर, यानी अपने-अपने विषय के प्रति धावन को रोक कर, उनके अपने व्यापार से रोक कर, चक्षु इन्द्रिय को रूपावलोकन से, कर्णेन्द्रिय को शब्द से, घ्राणेन्द्रिय को गन्ध से, मन को संकल्प-विकल्प से रोक कर **'इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभम् मनः।'** गीता २।६० । हे अर्जुन ! इन्द्रियाँ प्रमथन स्वभाववाली होती हैं । ये मन को बलात्कार से हर लेती हैं यानी खैंच कर विषयों में ले जाती हैं । अतः ध्यानकाल में इन्द्रियों का निरोध आवश्यक है । इन्द्रिय निरोध को दम कहते हैं ।

भक्त्या स्वगुरुम् प्रणम्य—अपने सद्गुरु को, 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य के अर्थ बोधन करानेवाले गुरु को भक्तिपूर्वक, अवहेलना से नहीं, निरहंकार हो कर प्रणाम करके । यदि गुरु साथ होगा तो विविक्त देश कैसे रहेगा ? गुरु की अनुपस्थिति में भी गुरु का ध्यान करके प्रणाम करे । गुरु को प्रणाम करने के तीन श्लोक नीचे देते हैं—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुः साक्षान्महेश्वरः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जो अखण्डमण्डलाकार समस्त जडजंगम सृष्टि में व्याप्त है,जिसने 'तत्त्वमसि' महावाक्यान्तर्गत 'तत्' पद का अर्थ व्यक्त किया है, उस श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूँ। जिसने अज्ञान के अन्धकार से अन्धे हुए की ज्ञानरूपी सुरमे की सलाई से नेत्र खोले हैं यानी प्रकाश दिखाया है, उस श्रीगुरु के चरणों में मैं प्रणाम करता हूँ। गुरु ही ब्रह्मा है, वही विष्णु है, वही साक्षात् महादेव है, वही परम ब्रह्म है, उस श्रीगुरु के चरणकमलों में मैं प्रणाम करता हूँ।

अव अन्तःकरण की स्थिति बताते हैं। **हृत्पुण्डरीकम् विरजं विशुद्धम्**—हृदयकमल रजोगुणरहित यानी रागद्वेषरहित, और विशुद्ध यानी शास्त्रविहित निष्काम कर्मानुष्ठान से विशेष शुद्ध अर्थात् निष्पाप अन्तःकरण। जैसे घ्राण इन्द्रिय का निवासस्थान नासिका होता है, जैसे चक्षु इन्द्रिय का निवासस्थान नेत्र होता है, वैसे ही अन्तःकरण का निवासस्थान हृदय होता है। यह कमल के आकार का बताया जाता है। अन्तःकरण में यदि रजोगुण की प्रवल मात्रा होगी तो वह विषय चिन्तन करेगा, अतः वह विरज होना चाहिये। यदि वह मलिन होगा तो तमोगुण के प्रभाव से ध्यान काल में निद्रा आ जायेगी। इस प्रकार के अन्तःकरण में किसका ध्यान करे? आगे बताते हैं।

विचिन्त्य मध्ये विशदम् विशोकम्—विरज और विशुद्ध अन्तःकरण के मध्य में चिन्तन यानी ध्यान करे, किसका? उस ब्रह्म का जो कि **विशदम्**—निर्मल शुद्ध, स्फटिकमणि के सदृश स्वच्छ, मायामल के स्पर्श से रहित **विशोकम्**—और शोकरहित, आनन्दमय, 'आनन्दो ब्रह्म' तैत्तिरीय श्रुति ३।६। ब्रह्म आनन्दरूप है। इस प्रकार के लक्षणोंवाले ब्रह्म का अन्तःकरण में विशेष ध्यान करे। विशद और विशोक ब्रह्म के तटस्थ लक्षण हैं। अभी ध्यान संवंधी विषय चल रहा है। अगले मंत्र से संवंध जोड़ो ॥५॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अचिन्त्य-मव्यक्त-मनन्तरूपं
शिवं प्रशान्त-ममृतं ब्रह्मयोनिम् ।
तथादि-मध्यान्तविहीनमेकं
विभुं चिदानन्दमरूप-मद्भुतम् ।।६।।

अर्थ—(पिछले मंत्र के अर्थ से सम्बन्ध जोड़ो।) अचिन्त्य, अव्यक्त, अनन्तरूप (परिपूर्ण) तथा आदि-मध्य-अन्त रहित, एक तत्त्व, सर्वव्यापी, चेतन, आनन्दरूप, अद्भुत ब्रह्म का चिन्तन करके, (ध्यान करके विद्वान् सर्वसाक्षी परं ब्रह्म को प्राप्त होता है।)

व्याख्या—उस ध्येयवस्तु यानी परमात्मा, ब्रह्म के अन्य तटस्थ लक्षण बताते हैं। **अचिन्त्यम्**—मन जिस का चिन्तन न कर सके। जिसका मन चिन्तन ही नहीं कर सकता, उसका ध्यान कैसे करेगा? ब्रह्म मन वाणी का विषय नहीं है, क्योंकि मन वाणी आदि उस ब्रह्म के प्रकाशन से ही चेतन से होते हैं। जैसे सुतादि अपने मातापिता के जन्म विवाहादि के बारे में नहीं जानते वैसे ही मन वाणी भी, अपने प्रकाशक के जोकि उनसे पहले का है, विषय में नहीं जान सकते। श्रवण-मनन-निदिध्यासन के उपरान्त ध्यान का विषय आता है। वह अचिन्त्य है इस प्रकार जानकर ध्यानकाल में इस के संबंध में संकल्प विकल्प का निवारण करना चाहिये। इस मंत्र में ब्रह्म के तटस्थ और स्वरूप लक्षण दिये हैं, उनको अपनी भावना करके अभ्यास करे, यथा 'मैं अचिन्त्य हूँ, चेतन हूँ, आनन्दरूप हूँ, आदि-मध्य-अन्त में सदा मुक्त हूँ, मैं अमृत हूँ' इस प्रकार अभ्यास करे। अभ्यास के बल से ब्रह्म के लक्षण अभ्यासी में उतर आते हैं, यह अभिप्राय है।

'यदभ्यासेन तद्भावो, भवेद् भ्रमरकीटवत् ।
अत्रापहाय सन्देहमभ्यसेत् कृतनिश्चयः ।।'

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ब्रह्मानुचिन्तनम् । जिस भाव का अभ्यास किया जाता है, अभ्यासी वही हो जाता है, जैसे कि अन्य जाति का कीट भ्रमर का ध्यान करने से भ्रमररूप हो जाता है। इस विषय में सन्देह त्याग कर ब्रह्म होने का अभ्यास दृढ़निश्चय के साथ करे।

अव्यक्तम्---शब्दस्पर्शादि जो अभिव्यक्ति के हेतु हैं, उन से ब्रह्म व्यक्त नहीं किया जा सकता, अतः अव्यक्त **अनन्तरूपम्**---विनाश रहित, देशकालवस्तु परिच्छेदशून्य, परिपूर्ण। 'अनन्त' लक्षण ब्रह्म का स्वरूप लक्षण है। **शिवम्**---मंगलात्मक, परमानन्दरूप होने से शिव, शुभ **प्रशान्तम्**---संसार के संस्पर्श से रहित, निस्तरंग जलराशिवत् निश्चल, प्रशान्त, **अमृतम्**---अमरपद का साधनभूत, अमरणधर्मा, अविनाशी **ब्रह्मयोनिम्**---वेदयोनि, वेदका कारण 'यस्य निःश्वसितं वेदाः।' मायोपहित ब्रह्म के श्वाँस वेद हैं। अन्य लक्षण बताते हैं।

तथा **आदि-मध्य-अन्त-विहीनम्, एकम्**---जन्म, स्थिति तथा विनाशरहित ; आदि, मध्य तथा अन्त तक सर्वप्रकार के परिच्छेदों से मुक्त ; अद्वितीय, विजातीय-सजातीय-स्वगतभेद शून्य, द्वैतवर्जित, **विभुम्**-सर्वव्यापक **चित्-आनन्दम्** तटस्थ लक्षण बता कर अब स्वरूप लक्षण बताते हैं। चेतन, ज्ञानस्वरूप, तथा निरतिशय आनन्दघन, आनन्द से ठसाठस पूर्ण, सत्-रूप, त्रिकालाबाध्य सत्ता वाला, ऐसा जोड़ लेना चाहिये। **अरूपम्**-निराकार, लौकिक आकार से रहित। **अद्भुतम्**-अनिर्वचनीय, जो इतना, उतना, ऐसा, वैसा, यह, वह आदि प्रत्ययों से व्यक्त न किया जा सके, वह अद्भुत। यहाँ तक निर्गुण ब्रह्म के तटस्थ और स्वरूप लक्षण बताये हैं। जो उत्तम साधक हैं, वे इन गुणों का ध्यान करें। इससे अगले मंत्र के उत्तरार्ध से सम्बन्ध जोड़ना चाहिये। 'ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात्।' ब्रह्म के पूर्वोक्त लक्षणों का ध्यान करके मननशील साधक समस्त भूतों के कारण, सर्वसाक्षी, अज्ञान से दूरतम ब्रह्म को प्राप्त होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अगले मंत्र में मन्दसाधकों के लिए शिवशक्त्यात्मक लीला-विग्रह के ध्यान का विषय बताते हैं। ६॥

उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं
त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं
समस्तसाक्षिं तमसः परस्तात् ॥७॥

अर्थ—उमाभवानी जिन के वामभाग में विराजती हैं, ऐसे परमेश्वर, सर्वसमर्थ, त्रिलोचन, नीलकंठ, प्रसन्नवदन भगवान शंकर का ध्यान करके मननशील साधक आकाशादि पंचमहाभूतों के आदिकारण, समस्त विश्व के साक्षी अज्ञान से दूर मंगलात्मक शिव को प्राप्त होता है।

व्याख्या—**उमासहायम् परमेश्वरम्**—उमा, ब्रह्मविद्या 'तस्या एव अम्बिकायाः ब्रह्मविद्यात्मको देह उमा शब्देन उच्यते'। तैत्तिरीयारण्यक के १०।१८ अनुवाक् में सायणाचार्य ने अपने भाष्य में ऊपर लिखे प्रकार से कहा है। भगवती अम्बिका का ब्रह्मविद्यारुप शरीर 'उमा' नाम से कहा जाता है। जिसकी सहायक ब्रह्मविद्या है यानी कामादि चोर रक्षिका है, वह उमासहाय, अर्धनारीश्वर विग्रह धारी शिव। वामभाग में जिसके उमाभवानी विराजती हैं वह उमासहाय, अथवा स्वशक्ति सहित परमेश्वर। वह शक्ति परशिवस्वरूप से अभिन्न है। भोक्ता–भोगात्मक प्रपंच सृष्टि के उदय से पहले लीनावस्था में विकल्प हेतुओं के अभाव से परशिव अत्यन्त निर्विकल्प होता है। उस स्वरूप में अध्यस्त माया भी विकल्परहित होती है। वह माया प्राणियों के कर्मपरिपाकवश विकल्पित सी होती है; उस काल में विभाग के अभाव में चिन्मात्र का आश्रय स्वीकार करती है। चिन्मात्र शिव भी माया के संबंधवश कुछ अपने स्वरूप को छोड़कर माया के सन्मुख होता है, पर उस काल

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

में विभाग नहीं होता। वह शिवशक्त्यात्मक स्वरूप कहलाता है। अतः उमासहाय परमेश्वर का 'ओं' अर्थ है, यानी शिवशक्त्यात्मक स्वरूप प्रणव प्रतिपाद्य है।

शिवशक्तिवाची मंत्र इस प्रकार है—'सोऽहम्'। इस मंत्र में से सकार (स) और हकार (ह) का लोप होने से 'ओम्' की उत्पत्ति होती है। भगवान शंकराचार्य ने प्रपंचसार में इस प्रकार कहा है—

सकारं च हकारं च लोपयित्वा प्रयोजयेत्।
संधिं वै पूर्वरूपाख्यं ततोऽसौ प्रणवो भवेत्॥

'सोऽहम्' मंत्र में से 'स' तथा 'ह' का काल्पनिक लोप करके तथा पूर्वरूप नामक संधि से जोड़ने पर यह 'सोऽहम्' मंन्त्र ही ओम् रूप में परिणत हो जाता है, यानी ओम् ही इस का पूर्वरूप, मूल है।

परमेश्वरम्—ब्रह्मादि देवताओं का नियन्ता होने से परमेश्वर **प्रभुम्**—समर्थ, जिसकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके वह प्रभु **त्रिलोचनम्**—तीन नेत्रवाला, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि जिसके नेत्र हों वह त्रिलोचन, अथवा विश्व-तैजस-प्राज्ञ नामक तीन प्रकार के जीव, तथा विराट—हिरण्यगर्भ—ईश्वर उन तीन प्रकार के जीवों के क्रमशः तीन प्रकार के ईश्वर, ये ही जिसके तीन लोचन हों यानी इन विविध जीवेश्वररूपों से जो प्रकाशित हो वह त्रिलोचन। **नील-कण्ठम्**—अमृतमंथन के समय सागर ने पहले विष फेंका, जिससे देवासुर व्यथित हो गये। तब भगवान शिव ने उस विष का पान किया, और उसे कंठ में धारण किया जिससे वे नीलकण्ठ कहलाते हैं। द्वैतरूप विषपान करने से नीलकंठ। **प्रशान्तम्**—प्रसन्न वदन, शान्तेन्द्रिय **ध्यात्वा**—उत्तम साधक ब्रह्म का निर्गुण ध्यान करके, यानी तटस्थ और स्वरूप लक्षणों का ध्यान करके, विजातीय प्रत्ययों का तिरस्कार करके तथा सजातीय प्रत्ययों का प्रवाह करके यथा, वह अचिन्त्य है,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अव्यक्त है, आनन्दरूप है इत्यादि लक्षणों को दृढ़ करके यानी उसके निष्कल स्वरूप का चिन्तन करके तथा जो मन्दमुमुक्षु हैं वे भगवान महादेव के लीलाविग्रह का ध्यान करके यथा वह परशिव 'उमासहायं त्रिलोचनं नीलकंठम्,' इत्यादि है। विशुद्ध सत्त्वगुण प्रधान भगवान शिव के सगुण, ध्यान से कालान्तर में निष्कल ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥१०।१०॥
तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥१०।११॥

बाह्य तृष्णाओं से रहित होकर मेरा निरन्तर और प्रीतिपूर्वक भजन करनेवालों को मैं बुद्धियोग देता हूँ। प्रभु के यथार्थ ज्ञान का नाम बुद्धि है। उस बुद्धियोग के बल से वे मुझ आत्मरूप परमेश्वर को आत्मरूप से समझ लेते हैं। ऐसे ही कल्याण चाहनेवाले भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये मैं उनके अन्तःकरण में बैठा हुआ उनके अज्ञानरूप अंधकार को विवेक बुद्धिरूप ज्ञानदीप द्वारा नष्ट कर देता हूँ।

भगवान ब्रह्माजीने पूर्व में जो भक्ति को ज्ञान का साधन बताया है, उसी को इस मंत्र में विशद किया है। 'श्रद्धा-भक्ति—ध्यानयोगादवैहि।' प्रयोजन यह है निर्गुण ब्रह्म अथवा सगुणब्रह्म दोनों के ध्यान से ब्रह्मविद्या प्राप्त हो सकती है। सगुण में अधिक समय लगता है, परन्तु कष्ट कम होते हैं। 'क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्' इति गीता १२।५। सच्चिदानन्द निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्तवाले पुरुषों के साधन में विशेष कष्ट होते हैं।

मुनिःगच्छति—इस प्रकार ध्यान द्वारा ब्रह्म को साक्षात्करके मननशील साधक प्राप्त होता है, किसको **भूतयोनिम्**—आकाशादि

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

महाभूतों के कारण मायोपहित ब्रह्म को, मायोपहित ब्रह्म तो साधक का लक्ष्य नहीं होता, ऐसी शंका दृष्टि में रखकर कहते हैं **समस्तसाक्षिम्**—देह—प्राण-मन इन्द्रियों के साक्षी को प्राप्त होता है। साक्षी किसे कहते हैं? **'ज्ञातृ-ज्ञान-ज्ञेयानां आविर्भावतिरोभावज्ञाता स्वयं एवं आविर्भावतिरोभावहीनः स्वयंज्योतिः स साक्षीत्युच्यते।'** सर्वसारोपनिषद्। जो ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय के उदय अस्त को जानता है, परन्तु जो स्वयं उदय अस्त से रहित स्वयंज्योति हो वह साक्षी कहलाता है। उस साक्षी को प्राप्त होता है। साक्षी को प्राप्त होना भी कैवल्यमोक्ष नहीं है, इस शंका को दृष्टि में रखकर पुनः कहते हैं **तमसः परस्तात्**—आवरण विक्षेप शक्तिरूपा अविद्या से संबंधशून्य परशिवस्वरूप विशुद्ध ब्रह्म को प्राप्त होता है।

यहाँ तीन वातें कही हैं—भूतयोनि, समस्तसाक्षी, तथा तमसः परस्तात्। ये साधना के स्तर हैं, पहले ईश्वर का स्वरूप जानना होगा, पीछे साक्षी का और अन्त में विशुद्ध ब्रह्म का। इस उपनिषद में शिव और ब्रह्म दोनों पर्यायवाचक पद हैं।

सूत जी भगवान वेदव्यास के शिष्य हैं। उन्होंने साक्षात् भगवान वेदव्यास से ब्रह्मविद्या सीखी है। कैवल्योपनिषद् के इस मन्त्र को उन्होंने सूतसंहिता में इस प्रकार खोला है—

अरूपं सच्चिदानन्दमद्भुतं परमेश्वरम्।
उमासहायमोमर्थं प्रभुं साक्षात्त्रिलोचनम्।
नीलकण्ठं प्रशान्तस्तं ध्यायेन्नित्यमतन्द्रितः ॥४।८।११॥

उस रूपरहित, सच्चिदानन्द, अद्भुत, परमेश्वर उमासहाय यानी प्रणव, प्रभु, साक्षात् तीन नेत्रोंवाले, नीलकंठ, परशिव का शान्तचित्त साधक सदा प्रमादरहित होकर ध्यान करे ॥७॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्
स एव विष्णुः स प्राणः स कालोऽग्निः स चन्द्रमाः ॥८॥

अर्थ वह ब्रह्म ही ब्रह्मा है, वही शिव है, वही इन्द्र है, वही अविनाशीतत्त्व है, वह सर्वका कारण होने से परम है, वह स्वतंत्र है, वह ही विष्णु है, वही प्राण है, वही काल, वही अग्नि तथा वही चन्द्रमा है।

व्याख्या—परशिव, ब्रह्म जो कि ध्येय और विज्ञेय वस्तु है, अद्वितीय तत्त्व है, और संसार मोचक है **सः ब्रह्मा**—ब्रह्मविद्या विवेचन में यथार्थ वात कही जाती है। कैवल्योपनिषद् वक्ता मुझ ब्रह्मा की स्वतंत्र सत्ता नहीं है, उस परमात्मा ने ही रजोगुण प्रधान माया की उपाधि सी धारण करके ब्रह्मा का रूप बनाया है। वह ब्रह्म ही सृष्टिरचना काल में चतुर्मुख ब्रह्मा, **स शिव**—ज्ञानदान अथवा सृष्टि संहार काल में वह ब्रह्मही पार्वतीपति त्रिनेत्र शिव **सः इन्द्रः**— देवताओं पर राज्य करने के लिये वह ही देवराज इन्द्र **सः अक्षरः**—वही नाशरहित **परमः**— ब्रह्मा शिव-इन्द्रादि का कारण होने से वह परम तथा **स्वराट्**—अपना आप शासक, स्वतंत्र होने से वह स्वराट् है, अन्य देवता परतन्त्र हैं। **सः एव विष्णुः**—वह ब्रह्म ही, अन्य नहीं, सृष्टिपालक शंखचक्रगदाधर विष्णु है **स प्राणः**—वह ही प्राणादिपंचवृत्तिरूप प्राण, जीवन है, तो मृत्यु कौन है? **सः कालः अग्निः**—वह ब्रह्म ही, उससे भिन्न नहीं, काल, मृत्यु और वैश्वानर दाहक अग्नि है, तो शीतल कौन है? स्वयं वह ब्रह्म ही **चन्द्रमाः**—शीतलकारी चन्द्रमा है। तात्पर्य यह है कि भिन्नदेवताओं के रूप में अपनी माया से विभिन्न उपाधियाँ धारण करके, ब्रह्म ही विराजते हैं। ब्रह्माविष्णु आदि नाम तो वाणी के विकारमात्र हैं। 'सर्वसाक्षी चैतन्यात्मारूप भगवान अपनी त्रिगुणात्मिका मायाशक्ति द्वारा अनन्त संघातों को धारण करके स्वयं प्रगट हुए हैं।' श्रीगुरुदेवप्रदत्त प्रथम ज्ञानरुद्रसूत्र। इस मंत्र में ब्रह्म का सार्वात्म्यभाव दिखाया है। ब्रह्म से भिन्न देवता नाम की कोई वस्तु नहीं है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ब्रह्मैव सर्वनामानि रूपाणि विविधानि च।
कर्माण्यपि समग्राणि बिभर्तीति श्रुतिर्जगौ ॥५०॥ अपरोक्षा०

ब्रह्म ही सब नाम, विविधरूप तथा समस्तकर्मों को धारण करता है इस प्रकार श्रुति भगवती ने गायन किया है ॥८॥

स एव सर्वं यद्भूतं
यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति
नान्यः पन्थाः विमुक्तये ॥९॥

अर्थ—वह ब्रह्म ही सब भूतकालीन वर्तमान तथा भावी सृष्टियों के रूप में है, वह शाश्वत है। उसको साक्षात् करके मृत्यु (अज्ञान) को पार कर जाता है, कैवल्यमोक्ष का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

व्याख्या—न केवल ब्रह्म विविध देवताओं के रूप में अवतरित है बल्कि समस्त सृष्टियाँ भी वही है। उसे "यत्सत्वे यत्सत्वं" अन्वय के द्वारा बताते हैं; सः एव सर्वं यत् भूतम्—वह ब्रह्म ही, एवपद से ब्रह्म से अतिरिक्त कुछ नहीं, निखिल सृष्टियां जो कि व्यतीत हो चुकी हैं यानी पैदा होकर प्रलय में नष्ट हो चुकी हैं, यत् च भव्यम्—और जो सृष्टियाँ आगे होनी हैं, वह ब्रह्म ही भूत, चकार से वर्तमान तथा भावी सृष्टियों के रूप में था, है और होगा।

ब्रह्म से भिन्न अन्य वस्तु का अभाव होने से उस अद्वितीय ब्रह्म के स्वरूपज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का अन्य उपाय नहीं है, यह दिखाते हैं। तम् सनातनम् ज्ञात्वा—उस शाश्वत ब्रह्म का साक्षाद्दर्शन करके ही, यानी अहम्‌रूप से अनुभवपूर्ण जानकर मृत्युम् अति-एति—मृत्यु को पार करता है, यानी जन्म मरण बंधन से छूट जाता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अब व्यतिरेक से बताते हैं। **न अन्यः पन्थाः विमुक्तये**—मोक्ष का अन्य कोई उपाय नहीं है। कर्मकाण्ड तथा द्वैतपरक उपासना से मोक्ष सिद्ध नहीं हो सकता, यह अभिप्राय है। 'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्।' कैवल्यमोक्ष केवल ज्ञानमात्र से प्राप्त होता है। 'ऋते ज्ञानान्न-मुक्तिः।' ब्रह्मज्ञान के विना मोक्ष नहीं। सर्वात्मदर्शनरूप ज्ञान से अद्वैत ब्रह्मपद को प्राप्त होता है, यह भाव है। अष्टावक्र गीता में कहा है—

एक एव भवाम्भोधावासीदस्ति भविष्यति।
न ते बंधोऽस्ति मोक्षो वा कृतकृत्यः सुखं चर ॥१५।१८॥

हे तात! (राजा जनक) एक ही अद्वितीय तत्त्व ब्रह्म में भवसागर भूतकाल में अध्यस्त था, वर्तमान में भी अध्यस्त है, और आगे भी अध्यस्त होगा। परमार्थतः न तुझे बंध है, न तेरा मोक्ष है, तुम कृतकृत्य हुए सुख से रहो ॥९॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि।
संपश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना ॥१०॥

अर्थ—सर्वप्राणियों के हृदय में विराजमान आत्मा को तथा सर्वभूतों को आत्मा में अध्यस्त इस प्रकार आत्मा के सर्वत्र दर्शन करता हुआ साधक परम ब्रह्म को प्राप्त होता है, कैवल्यमोक्ष का अन्य कोई कारण नहीं है।

व्याख्या—ब्रह्मा जी दूसरे प्रकार से मुक्ति का उपाय बताते हैं। **सर्वभूतस्थम् आत्मानम्**—जो मुमुक्षु अभ्यास करके समस्त भूतभौतिक प्रपंच की प्रतिभासित अवस्था में भी उसके भीतर सर्वत्र कारणरूप से अवस्थित आत्मा को ही देखता है, नामरूप को नहीं देखता, तथा **सर्वभूतानि च आत्मनि**—आत्मा में ही कार्यरूप से यानी नामाकार से

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सब भूतभौतिक प्रपंच अध्यस्त हैं, इस प्रकार **संपश्यन्** संशयविपर्यय रहित होकर देखता हुआ **परमम् ब्रह्म याति**—उत्कृष्ट ब्रह्म को प्राप्त होता है। **न अन्येन हेतुना**—अन्य हेतु से नहीं। तात्पर्य यह है जो सर्वभूतों के मध्य में आत्मा को अनुगत देखता है, नामरूप नहीं देखता, जैसे माला के बीच में सूता अनुस्यूत है, वैसे ही सब भत आत्मा से अनुस्यूत हैं; आत्मदेव ही सब भूतों का नाम आकार धारण कर विराजते हैं, इस प्रकार जो देखता है, तथा सब प्राणी समुदाय और नद, पर्वत, गिरि, नगरादि आत्मा में ही कल्पित हैं, अध्यस्त हैं रज्जु में सर्प की भांति, इस प्रकार जो देखता है, वह ब्रह्म का ही दर्शन करता है, और युक्त हो जाता है। यहाँ तक सर्वात्मभाव से द्वैतरहित परम ब्रह्म की प्राप्ति होती है, यह बताया है ॥१०॥

आत्मानमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासात्पापं दहति पण्डितः ॥११॥

अर्थ—आत्मा को नीचे की अरणि* (लकड़ी) तथा प्रणव (ओंकार) को ऊपर की अरणी करके ध्यानरूप घिसने के अभ्यास से यानी संघर्ष से उत्पन्न ज्ञानाग्नि से पण्डितजन सर्वपाप का दहन करता है।

व्याख्या—ब्रह्मप्राप्ति का एक अन्य उपाय बताते हैं। **आत्मानम् अरणिम् कृत्वा**—लकड़ी के दो टुकड़ों के संघर्ष से अग्नि उत्पन्न होती है। आत्मा को, जो कि ध्येय, विज्ञेय वस्तु है, नीचे की अरणि यानी

---

*अरणिः—यज्ञ में यज्ञीय अग्नि उत्पन्न करने का विशेषयन्त्र। इसमें पीपल की चार-चार अङ्गुल मोटी और हस्तमात्र लम्बी नीचे की लकड़ी होती है खैर की ऊपर की तथा बीच में की बेलन के आकार की वितस्तिमात्र गोल लकड़ी होती है उस पर रस्सी लपेट कर दही बिलोने के समान घुमाते हैं तब नीचे की लकड़ी में रगड़ के कारण अग्नि उत्पन्न होती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सूखी लकड़ी मान कर **प्रणवम् च उत्तर-अरणिम्**—ओंकार को ऊपर अरणि मान कर, उनको बलपूर्वक घिसो। घिसने से उस दारु में निहित अग्नि प्रगट हो जाती है। आत्मा और ओंकार तो कोई ठोस वस्तु नहीं, उनको कैसे घिसें? **ध्याननिर्मथन-अभ्यासात्**—ध्यानरूप मथन (घिसने) के अभ्यास से किस प्रकार? समस्त जगत को ओंकारमात्र जाने। ओंकार का वाच्यार्थ जगत् है, ओंकार जगत् का नाम है। ओंकार की तीन मात्रा होती हैं, अ+उ+म्। प्रथम अक्षर अकार नामवाला विश्वकजीव, उकार नाम वाला तैजस नामक जीव, तथा मकार नामवाला पुरुष प्राज्ञ नामक जीव कहलाता है। यह भावना समाधि से पूर्व की जाती है। प्रणव के प्रथम अक्षर विश्व नामक पुरुष को उकार में लय करे फिर ओंकार के दूसरे अक्षर उकार नामक तैजस पुरुष को प्रणव के अन्तिम अक्षर मकार में लय करके फिर मकार संज्ञावाले प्राप्त पुरुष को, जोकि तैजस और विश्व का कारण भी है, नित्यप्राप्त चेतनघन परमात्मा में लीन करे। वही सर्वाधिष्ठान परम ब्रह्म, नित्ययुक्त उपाधिरहित, मायामल रहित ज्ञानचक्षु "मैं" हूँ।

इसी क्रमलय का नाम प्रणव और आत्मा का संघर्षण है। यह विषय भगवान वेदव्यास ने श्रीरामगीता में व्यक्त किया है। उसी के आधार पर हमने लिखा है। पाठकों की कौतूहलशान्ति के लिये मूल श्लोक भी उद्धृत करते हैं।

ओंकार के तीन अक्षर जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति अवस्था के प्रतीक हैं। जाग्रत् को स्वप्न में स्वप्न को सुषुप्ति में और उसको अपने आधार आत्मा में लय करो। चौथी यानी समाधि अवस्था को तुरीयावस्था कहते हैं। यह क्रिया समाधि से पूर्व की जाती है। प्रणव की मात्राओं से उपलक्षित अवस्थात्रय को लय करते हुए ब्रह्म के अनुसंधानरूप ध्यान अभ्यास से ब्रह्मका साक्षात्कार होता है, यह प्रयोजन है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पापम् दहति पण्डितः—इस ध्यान अभ्यास से प्रज्वलित ज्ञानाग्नि से पण्डित, विवेकी पुरुष अविद्यारूपीपाप का दहन करता है, यानी आत्मसाक्षात्कार करता है। आत्मा और ब्रह्म पर्यायवाची शब्द है। 'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः।' पाप (अविद्या) नाश होने से साधकों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। जिसकी बुद्धि पण्डा हो उसे पण्डित कहते हैं। पण्डा—"मैं ब्रह्म हूँ" इस प्रकार जिसकी निश्चयपूर्वक बुद्धि हो वह पण्डित होता है।

श्रीरामगीता के श्लोक लिखते हैं—

पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तये-
दोंकारमात्रं सचराचरं जगत्
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको
विभाव्यते ज्ञानवशान्न बोधतः ॥४८॥

अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको,
ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात्
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः
समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥४९॥

विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापये-
दुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम्।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं
द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ॥५०॥

मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे
विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम्।
सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिम-
द्विज्ञानदृङ्मुक्त उपाधितोऽमलः ॥५१॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

समाधि से पहले समस्त चराचर जगत् को ओंकारमात्र चिन्तन करे, क्योंकि ओंकार का वाच्यार्थ जगत् है, और ओंकार उसकीसंज्ञा (नाम) है। समाधि के निमित्त ऐसी भावना की जाती है बोध के उपरान्त नहीं ।४८।

अकार नामवाला पुरुष विश्वक, उकार नाम वाला तैजस पुरुष कहा जाता है, मकार नाम वाला पुरुष प्राज्ञ कहा जाता है, क्रम से वेदविदों से। यह भावना समाधि से पूर्व की जाती है, परमार्थ में ऐसा नहीं है ।४९।।

बहुत प्रकार से अवस्थित प्रणव के प्रथम अक्षर विश्वनामक पुरुष को उकार में लय करे, फिर ओंकार के दूसरे अक्षर उकार संज्ञावाले तैजस पुरुष को प्रणव के अन्तिम अक्षर मकार में लय करके, ।५०।

मकार संज्ञावाले प्राज्ञ पुरुष को जो कि तैजस और विश्वक पुरुष का कारण भी है, नित्यप्राप्त चैतन्यघन परमात्मा में लीन करे। वही सर्वाधिष्ठान परम ब्रह्म, नित्यमुक्त उपाधिरहित, मायामल-रहित, ज्ञानचक्षु मैं (आत्मा) हूँ ।।५०।।११।।

स एव मायापरिमोहितात्मा
शरीरमास्थाय करोति सर्वम् ।
स्त्रियन्नपानादि-विचित्रभोगैः
स एव जाग्रत्परितृप्तिमेति ।।१२।।

अर्थ—वह परमेश्वर ही अपनी माया से मोहित सा हुआ, शरीर में आत्माभिमान करके सर्वव्यापार करता है। स्त्री, अन्न, पानादि विचित्र भोगों को जाग्रदावस्था में भोग कर पूर्ण संतुष्टि प्राप्त करता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याख्या—अब यह बताते हैं कि जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति आदि अवस्था भी ईश्वर की ही होती हैं, परन्तु उन अवस्थाओं में वह माया-परिमोहित होने का स्वाँग रचता है। जाग्रदाद्यवस्थाओं में सुख दुःखभोक्ता तो संसारी जीव ही होता है, ईश्वर नहीं होता। इनकी यानी जीव ईश्वर की एकता कैसे संभव हो सकती है? इस शंका को दृष्टि में रख कर कहते हैं **सः एव माया-परिमोहितात्मा**—वह ईश्वर ही अपनी माया यानी अविद्या की आवरण-विक्षेपकारी शक्ति से सम्यक्प्रकार मोहित सा हुआ, परमार्थ से नहीं, लीला के लिये **शरीरम् आस्थाय**—शरीर में आस्था रखकर यानी देहाभिमानी हुआ **करोति सर्वम्**—निखिल व्यापारसमुदाय करता है, **स्त्रियन्नपानादि-विचित्र भोगैः**—वह परिमोहित सा हुआ ईश्वर ही मनोनुकूला युवतियों को भोगता है, मनोनुकूल भोजन-पान करता है, आदि पद से चन्दन लगाता है, माला पहनता है, रुचिर वस्त्र पहनता है—इस प्रकार के नाना भोगों से **सः एव जाग्रत् परितृप्तिम् एति**—पुष्कल तृप्ति को प्राप्त होता है, कौन? वह ईश्वर ही, कब? जाग्रत् अवस्था में। जिस अवस्था में इन्द्रियों को स्थूलभोगों की उपलब्धि हो वह जाग्रद-वस्था कहलाती है।

तात्पर्य यह है कि जाग्रदवस्था में जो जीव सा होकर भोग भोगता है, वह ईश्वर ही है। जीव नाम की कोई चिड़िया नहीं होती है। 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' गीता १५।७। इस देह में मुझ ईश्वर का सनातन अंश जीव है।

क्या ब्रह्मा, क्या विष्णु, क्या भूत, क्या वर्तमान, क्या भावी सृष्टियाँ, क्या जीव क्या ईश्वर सभी रूपों में एक अद्वितीय असंग चेतन ब्रह्म ही प्रकाशित होकर लीला करता है, वही निर्भेद एकमात्र सच्चिदा-नन्द सत्ता विराजती है, इसीलिये इस उपनिषद् का नाम कैवल्योप-निषद् है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सूतजी ने इस मंत्र को सूतसंहिता के यज्ञवैभव खण्ड के ८ वें अध्याय में तीन मार्मिक श्लोंकों में विशद किया है। उन श्लोकों को पाठकों की सन्तुष्टि के लिये नीचे लिखते हैं।

स एव भगवानीशो माययैवाऽऽत्मभूतया।
मुह्यमान इव स्थित्वा स्वस्वातन्त्र्यबलेन तु ।।१९।।
शरीरमिदमास्थाय करोति सकलं पुनः।।
जाग्रत्संज्ञमिदं धाम प्रकल्प्य स्वीयमायया ।।२०।।
राजपुत्रादिवत्तस्मिन् क्रीडया केवलो हरः।
अन्नपानादिभिः स्त्रीभिस्तृप्तिमेति सुरर्षभाः ।।२१।।

वह भगवान् शिव ही अपने से उद्‌भूत माया से मोहित सा हुआ, स्वतंत्रता से ही यानी अपनी माया के आधीन होकर नहीं, इस मनुष्य देह को धारण करके सब व्यापार करता है। वह अपनी माया से जाग्रत् नाम वाला धाम यानी अवस्था कल्पित करके राजपुत्र की भांति जाग्रत् धाम में लीला वश वह शिव ही, हे श्रेष्ठ देवताओ! अन्नपानादि तथा स्त्रियों से भोग करता हुआ सृष्टि को प्राप्त होता है ।।१२।।

स्वप्ने स जीवः सुखदुःखभोक्ता
स्वमायया कल्पितजीवलोके।
सुषुप्तिकाले सकले विलीने
तमोऽभिभूतः सुखरूपमेति ।।१३।।

अर्थ—स्वप्नावस्था में वह परमेश्वर ही जीवरूप से अपना माया से कल्पित जीवलोक में (स्वप्नसृष्टि में) सूक्ष्म सुखदुःख भोगता है। और सुषुप्ति अवस्था में जब कि समस्त इन्द्रियगण अन्तःकरण सहित अपने कारण अविद्या में लीन हो जाते हैं वह अज्ञान से ढके हुए ब्रह्मानन्द को भोगता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याख्या—जाग्रदवस्था वता कर अव स्वप्नावस्था तथा सुषुप्त्यवस्था में भी ईश्वर ही क्रीड़ा करता है, यह वताते हैं। **स्वप्ने सः जीवः**—स्वप्नावस्था में भी वह ईश्वर ही तैजस नाम जीवरूप से **सुखदुःख भोक्ता**—सुखदुःख का भोगनेवाला होता है, मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ इत्यादि अनुभव करता है। स्वप्नावस्था में तो स्थूलेन्द्रियाँ उपरामता को प्राप्त हो जाती हैं, तव कैसे भोग भोगता है? **स्वमायया कल्पित जीवलोके**—वह ईश्वर अपनी माया से, विना साधन सामग्री के, स्वप्नावस्था में भी, जैसे कि जाग्रत् में, जीवलोक यानी सूक्ष्म भोगलोक की, तथा सूक्ष्म शरीर की रचना करता है, और भोगों को भोग कर तृप्त होता है। सूतसंहिता का अगला श्लोक उद्धृत करते हैं।

स्वप्नकाले तथा शंभुर्जीवत्वेन प्रकाशितः।
सुखदुःखादिकान्भोगान् भुङ्क्ते स्वेनैव निर्मितान् ॥२२॥

स्वप्नकाल में वह शंभु (ईश्वर) ही तैजसजीवरूप से प्रकाशित होता है, और अपनी माया से ही निर्मित भोगों को भोगता है। तात्पर्य यह है कि तैजसनामक जीव भी ईश्वर से भिन्न कुछ नहीं है। **सुषुप्तिकाले**—सुषुप्ति अवस्था यानी गाढ़ीनींद में **सकले विलीने**—मन, बुद्धि, इन्द्रियादि अपने कारण अविद्या में लीन हो जाते हैं यानी बीजरूप से अवस्थान करते हैं, उसकाल में भी ईश्वर ही प्राज्ञनामक जीवरूप से **तमः अभिभूतः**—अविद्या से आवृत हुआ यानी सर्वदृश्यविर्वाजित हुआ, कुछ नहीं जानता हुआ **सुखरूपम् एति**—अज्ञानाच्छादित सुख भोगता है, क्यों ? लीला से। विषय तो सुषुप्ति में होते नहीं, जैसे कि जाग्रत् और स्वप्नकाल में होता है, तब कौन सा सुख भोगता है ? स्वयंप्रकाश आत्मानन्द भोगता है। 'वाह री सुषुप्ति ! तेरा क्या कहना, यदि तेरे में अज्ञान न होता।' सुषुप्ति में यदि अज्ञान न रहे तो वह समाधि कहलाती है। सूतसंहिता में से अगला श्लोक लिखते हैं—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

सुषुप्तिकाले सकले विलीने तमसाऽऽवृतः ।
स्वस्वरूपमहानन्दं भुंक्ते दृश्यविवर्जितः ।।२३।।

गाढ़ी नींद में जहाँ मन बुद्धयादि लय हो जाते हैं, वह ईश्वर ही अज्ञान से ढका हुआ होकर, अपने स्वरूप के महान आनन्द का उपभोग करता है, उस अवस्था में द्वैत का अभान होता है ।

तात्पर्य यह है कि स्वप्नावस्था में बाह्येन्द्रियाँ उपराम को प्राप्त हो जाती हैं, और अन्तःकरण स्वप्नपदार्थों के रूप में परिणत हो जाता है । सुषुप्तिकाल में यह अन्तःकरण भी लीन हो जाता है, कहाँ ? 'भावरूप अज्ञान में' यानी केवल अज्ञान रहता है अतः वह ईश्वर स्वरूपभूत आनन्द का उपभोग करता है, और जागने पर कहता है 'मैं बहुत सुख से सोया, कुछ खबर नहीं रही ।' ।।२३।।

प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात् सूक्ष्मदेही तु तैजसः ।
स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः ।।
एवमीशोऽपि संप्रोक्तः ईश-सूत्र-विराट्पदैः ।
प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्टयात्मा परःस्मृतः ।। देवीगीता ।।

जीव तीन प्रकार के कहे गये हैं । कारणात्मा यानी अविद्या रूपी देह में अभिमानी जीव को प्राज्ञ कहते हैं । सुषुप्ति में इसकी अभिव्यक्ति होती है । सूक्ष्मदेह यानी लिङ्गशरीर में अभिमान करनेवाले जीव को तैजस कहते हैं । स्वप्न में इसकी विशेष अभिव्यक्ति होती है । स्थूलदेह में अभिमान करनेवाले जीव को विश्व कहते हैं । इसी प्रकार इन जीवों के क्रमशः ईश्वर, सूत्रात्मा तथा विराट नामक ईश्वर कहे जाते हैं । जीव तो व्यष्टि में (individual) अभिमान करते हैं और ईश्वर समष्टि (collective) में अभिमान करते हैं । अर्थात् प्रत्येक अवस्था के समस्त जीवों का प्रत्येक ईश्वर समष्टिरूप है ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पञ्च प्राण-मनोबुद्धि-दशेन्द्रियसमन्वितम् ।
अपंचीकृतभूतोत्थं सूक्ष्माङ्गं भोगसाधनम् ।।
अनाद्यविद्यानिर्वाच्या कारणोपाधिरुच्यते ।
उपाधित्रितयादन्यदात्मानमवधारय ।।

पांचप्राण, मन, बुद्धि, पांच ज्ञानेन्द्रियों पांच कर्मेन्द्रियों से युक्त अपंचीकृत पंचभूतों से निर्मित, सुखदु:खादि भोगने का साधन सूक्ष्म शरीर कहलाता है । अनिर्वाच्या अनादि अविद्या को कारण उपाधि कहते हैं, यानी इसे कारण शरीर कहते हैं । स्थलशरीर सर्वविदित है । इन स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरों से भिन्न, इनके प्रकाशक तथा अधिष्ठान को आत्मा समझो ।

ब्रह्माजी के वचनों को समझने के लिये प्रासंगिक विषयों को किंचित् विस्तार से खोलना पड़ा है ।।१३।।

पुनश्च जन्मान्तरकर्मयोगात्
स एव जीवः स्वपिति प्रबुद्धः ।
पुरत्रये क्रीडति यश्च जीवः
ततस्तु जातं सकलं विचित्रम् ।
आधारमानन्दमखण्डबोधं
यस्मिँल्लयं याति पुरत्रयं च ।।१४।।

अर्थ—पुन: पूर्वजन्मकृत कर्मफल भोग उदय होने से वह जीवरूप से ईश्वर ही सुषुप्ति से क्या तो स्वप्न में चला जाता है अथवा सीधा जाग्रदवस्था में चला जाता है । जो जीवरूप से ईश्वर है वह तीनों पुरों यानी अवस्थाओं में क्रीडा करता है । उसी परमात्मा से ही यह सकल अद्भुत जगत् उदय होता है । वह परमात्मा सर्वाधिष्ठान, आनन्दरूप, अखंड ज्ञान है, इसी में तीनों पुर लय होते हैं ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याख्या–पुनः च जन्मान्तर-कर्म योगात्–सुषुप्त्यवस्था में अज्ञानावृत ब्रह्मानन्द को भोगकर फिर पूर्व जन्म में किये हुए कर्मफलभोग के लिये, यदि प्रारब्धशेष हो जाये तो शरीरपात हो जाता है, यदि अवरोध हो तो पुनः पुनः क्रीड़ा करता है **सः एव जीवः**––सुषुप्ति में आनन्द प्राप्त करने वाला ईश्वर ही, अन्य कोई नहीं **स्वपिति प्रबुद्धः**––क्या तो सुषुप्ति से स्वप्नावस्था को प्राप्त होता है अथवा सुषुप्ति से सीधा जागरण में आ जाता है। इस प्रकार **पुरत्रये क्रीडति यः च जीवः**–– तीन पुरों, नगरों में यानी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन पुर हैं, इन में जो ईश्वर ही, चकार का अर्थ ही होगा, जीवरूप से क्रीडा करता है, **ततः तु जातम् सकलम् विचित्रम्**––उसी ईश्वर से ही, अन्य से नहीं, समस्त भोग-भोग्य-भोक्तात्मक वननदपर्वतादि सहित विश्व उत्पन्न होता है, जो अद्वितीय निष्प्रपंच ब्रह्म है, उसी में से मायावशात् सत्यवत् भासने वाला जगत् उत्पन्न होता है, वास्तव में नहीं यानी परमार्थ में वह सदा असंग निष्प्रपंच एवं अद्वितीय ही रहता है।

अब इन तीनों धामों का आधार बताते हैं।

आधारम्–आनन्दम्-अखण्डबोधम्––यह आधार तुरीय यानी चौथा कहलाता है। यह पारमार्थिक सत्ता, सच्चिदानन्दघन परिपूर्ण परमात्मा इन तीनों पुरों का यानी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति का आधार है, किस प्रकार? जैसे कि सर्प के फण, धड़ तथा पूंछ का थोड़े अन्धेरे में पड़ी रज्जु आधार होती है। जैसे बाइसकोप के समस्त दृश्यों का आधार पर्दा होता है, उसी प्रकार परमात्मा सब का आधार है, उसी में ये तीनों पुर कल्पित हैं, उस आधार के अन्य लक्षण बताते हैं। **आनन्दम्**––वह निरतिशय आनन्दरूप है, उसमें वैषयिक सुखों की भांति दुःख का रंचमात्र भी मिश्रण नहीं है, **अखण्डबोधम्**––वह न केवल आनन्दरूप है वरन् एकात्मक स्वयं प्रकाश ज्ञान स्वरूप भी है।

यस्मिन् लयम् याति पुरत्रयम् च––इसी आधारभूत चेतनानन्द परमात्मा में तीनों पुर विनाश को प्राप्त होते हैं, यानी जब इस आधार

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

का साक्षात्कार हो जाता है, तो इसमें अध्यस्त जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि पुर विलीन हो जाते हैं अर्थात् उनका अभाव हो जाता है। ईषत् अन्धेरे में पड़ी रस्सी जैसे सर्प भासती है, और भय कम्पनादि उत्पन्न करती है, परन्तु जिस काल में प्रकाश किया जायेगा और उस आधार-भूत रस्सी का ज्ञान हो जायेगा, उसी क्षण सर्प का अत्यन्ताभाव हो जायेगा, यह तात्पर्य है। आधार ही अध्यस्त वस्तु होकर भासा करता है, यह सिद्धान्त है, अध्यस्त वस्तु अपने अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती। अधिष्ठान का ज्ञान अध्यस्त वस्तु का अवसान है।

इस एक मंत्र के रहस्य को सूतजी ने करुणा करके १५ भव्य अनुपम विशद श्लोकों में खोला है। इनकी गम्भीरता और रहस्यो-त्पादकता को दृष्टि में रख कर, पाठकों के कल्याण के लिये, इनको अर्थसहित नीचे लिखा जाता है—

पुनः पूर्वक्रियायोगाज्जीवत्वेन प्रकाशितः।
जाग्रत्संज्ञमिदं धाम याति स्वप्नमथापि वा ॥२४॥
पुरत्रयमिदं पुंसो भोगायैव विनिर्मितम्।
भोगश्चास्य सदा क्रीडा न दुःखाय कदाचन ॥२५॥
विश्वाधिको महानन्दः स्वतन्त्रो निरुपद्रवः।
असक्तः सर्वदोषैश्च कथं दुःखी भवेद्धरः ॥२६॥
स न जीवः शिवादन्यो यो भुङ्क्ते कर्मणां फलम्।
भेदाभावाच्चितश्चेत्यं न कर्मफलमर्हति ॥२७॥
अतः सर्वजगत्साक्षी चिद्रूपः परमेश्वरः।
अद्वितीयो महानन्दः क्रीडया भोगमर्हति ॥२८॥
धामत्रयमिदं शंभोर्न न दुःखाय कदाचन।
क्रीडारामतया भाति न चोद्यार्हो महेश्वरः ॥२९॥
इदं धामत्रयं शंभोर्विभेदेन न विद्यते।
शंभुरेव तथा भाति, न ह्यन्यत्परमेश्वरात् ॥३०॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यावस्थारूपेण भाति यः।
स विश्व-तैजस-प्राज्ञसमाख्यः क्रमशो भवेत् ॥३१॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विश्वो हि स्थूलभुङ्नित्यं तैजसः प्रविविक्तभुक् ।
प्राज्ञस्त्वानन्दभुक्साक्षी केवलः सुखलक्षणः ॥३२॥
त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता यश्च प्रकीर्तितः ।
उभयं ब्रह्म यो वेद स भुञ्जानो न लिप्यते ॥३३॥
अश्वमेधसहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च ।
कुर्वन्नपि न लिप्येत यद्येकत्वे प्रपश्यति ॥३४॥
जीवरूप इव स्थित्वा यः क्रीडति पुरत्रये ।
स न जीवः सदा शंभुः सत्यमेव न संशयः ॥३५॥
ततस्तु जातं सकलं विचित्रं सत्यवत्सुराः ।
स सत्योऽसत्यसाक्षित्वात् साक्षित्वाच्चित्सुखं तथा ॥३६॥
प्रेमास्पदत्वादद्वैतो भेदाभावात्सुरर्षभाः ।
तस्मिन्नेव लयं याति पुरत्रयमिदं ततः ॥३७॥
न जीवो जीववद्भाति साक्षाद्ब्रह्मैव केवलम् ।
अज्ञानाज्जीवरूपेण भासते न स्वभावतः ॥३८॥

सुषुप्ति में स्वरूपानन्द भोग कर फिर वह शंभु (ईश्वर) ही जो कि जीवरूप से प्रकाशित हुआ है पूर्वजन्म के कर्मफल भोगने के लिये जाग्रदवस्था नामक धाम में आता है अथवा सुषुप्ति से स्वप्नावस्था में चला जाता है ॥२४॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्ति ये तीन धाम पुरुष के भोग के लिये ही परमेश्वर की माया ने रचे हैं। यदि आप कहें कि जीव ईश्वर है, तो ईश्वर तो भोग नहीं भोगता, क्योंकि वह असंग है। इस पर कहते हैं कि ईश्वर के सुख दुःख भोग क्रीडा के लिये है, अतः वह दुःख के कारण नहीं है ॥२५॥

शंभु का भोग अतिसंसारी, महानन्द होता है, क्योंकि वह स्वतंत्र है और सर्व उपद्रव से रहित है, परतन्त्रता से दुःख हुआ करता है, अतः शंभु के सांसारिक वैषयिक सुखभोग लीलामात्र होते हैं। अतः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शंभु संग दोषों से रहित है, इसलिये हर किस कारण से दुःखी होगा? ॥२६॥

मान लिया कि ईश्वर को तो दुःख नहीं होता, परन्तु जीव तो परतंत्र है, उसको दुःख होगा। इस पर कहते हैं, वास्तव में शिव से भिन्न जीव नहीं है, जो कि कर्मफल का भोग करता है, परन्तु वह लीलामात्र है, क्योंकि भेद के अभाव से वह चैतन्यात्मा कर्मफलभागी नहीं वन सकता ॥२७॥

इसलिये समस्त जगत् का साक्षी, ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर, अद्वितीय, महानन्द स्वरूप का यदि भोग भोगना संभव है, तो वह क्रीडामात्र से है, वास्तव में वह भोग से अलिपायमान ही रहता है। (जैसे पिता अपने शिशुपुत्र से खेलते समय शिशु के सदृश तोतली भाषा बोलता है, वह लीला उसके लिये सुखकर है।) ॥२८॥

तीनों धाम (जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति) भगवान् शंभु के दुःख के लिये कभी नहीं होते। ये तीनधाम शंभु के लिये भेदवुद्धि से विद्यमान नहीं हैं अर्थात् ये माया कल्पित हैं, अतः मिथ्याभूत हैं, परमार्थ से स्वयं शम्भु ही तीन अवस्था, उनके पृथक् पृथक् भोक्ता तीन जीव तथा तथा तीन ईश्वर और स्थूल-सूक्ष्म और आनन्द तीन प्रकार के भोग से प्रकाशित है, परमेश्वर से भिन्न जीवादि कुछ नहीं हैं ॥२९-३०॥

जो शंभु जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति नामक अवस्थाओं से प्रकाशित है, वही शंभु (ईश्वर) क्रमशः प्रत्येक अवस्था का भोक्ता विश्व, तैजस, प्राज्ञ नामक जीवरूप से प्रकाशित होता है ॥३१॥

वह शंभु ही विश्व नामक जीवरूप से जाग्रदवस्था के स्थूल भोग भोगता है, तैजस नामक जीवरूप से सूक्ष्म भोग भोगता है, तथा प्राज्ञ

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

नामक जीवरूप से अज्ञानाच्छादित आनन्द भोगता है,तथा वह साक्षी है, और उसका मुख्य लक्षण आनन्द है ।।३२।।

जाग्रत्, स्वप्न तथा सुषुप्ति में भोग्यवस्तु और भोक्ता के रूप से जिन्हें कहा गया है, वे दोनों ही यानी भोग्यवस्तु और भोक्ता ब्रह्म ही है, क्योंकि भोग्य प्रपंच और भोक्ता जीव दोनों ब्रह्म में अध्यस्त होने से ब्रह्म ही हैं, अतः इन दोनों को ब्रह्म जानने वाले को भोगजनित पुण्यपाप लिपायमान नहीं करते ।।३३।।

सहस्रों अश्वमेध यज्ञ करता हुआ भी तथा सैकड़ों ब्रह्म हत्या करता हुआ भी एक अद्वितीय ब्रह्म का दर्शन करने वाला पापपुण्य से लिपायमान नहीं होता ।।३४।।

जीवरूप सा होकर जो तीनों पुरों में क्रीडा करता है वह वास्तव में जीव नहीं है, वह सदा स्वयं शंभु ही है, यह सत्य बात है, इसमें संशय न करना ।।३५।।

हे देवताओं ! उसी अद्वितीय परम ब्रह्म से भोक्तृ-भोग्यात्मक विचित्र समस्त जगत् मायावशात् सत्यवत् उत्पन्न हुआ है, परमार्थ से वह सत्य रूप है, क्योंकि वह समस्त असत्य प्रपंच का साक्षी है, द्रष्टा है, और साक्षी होने से वह चेतन और सुखरूप है ।।३६।।

हे श्रेष्ठ देवताओ ! वह आत्मा परम प्रेमास्पद यानी सब से प्रिय होने तथा जाग्रत्स्वप्नादिभेदरहित होने से अद्वैत है। इस प्रकार सच्चिदानन्द रूप जो साक्षी है उसमें ही जाग्रदादि अवस्थात्रय लीन होती हैं ।।३७।।

चूंकि वह अवस्थात्रय का साक्षी है, अतः वह जीव नहीं है, किन्तु अविद्या के कारण वह जीववत् भासता हुआ उपाधि निरास से वह साक्षात् अद्वैत ब्रह्म है। उसका जीवरूप से भासना अज्ञान के कारण से है, वह स्वभाव से जीव नहीं है ।।३८।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः ।
पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः ।।

स्कन्दोपनिषद्

जीव ही शिव है, शिव ही जीव है, यथार्थ में जीव शुद्ध शिव (ब्रह्म) ही है। पाशों से जब शिव वंधता सा है तव जीव कहलाता है, पाशों से जव मुक्त सा होता है तव वह सदाशिव है। नीचे लिखे आठ पाश कहे जाते हैं।

घृणा लज्जा भयं शंका जुगुप्सा चेति पञ्चमी ।
कुलं शीलं तथा जातिरष्टौ पाशा इमे स्मृताः ।।

घृणा, लज्जा, भय, शंका, जुगुप्सा, (दूसरों के गुणों को छिपाना) कुल, कुलधर्म, जाति ये आठ पाश कहे जाते हैं।

एतस्माज्जायते प्राणो, मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापश्च पृथ्वी विश्वस्यधारिणी ।।१५।।

अर्थ—इस अक्षर पुरुष से ही प्राण उत्पन्न होता है, तथा इससे ही मन, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल और सारे संसार को धारण करने वाली पृथ्वी उत्पन्न होती है।

व्याख्या—निरुपाधिक निष्प्रपंच ब्रह्म से किसी भी विकार की उत्पत्ति संभव नहीं है, इसलिये उसमें से जब किसी विकार की उत्पत्ति प्रतिपादन करनी पड़ती है, तो उसके साथ माया की उपाधि का आरोपण किया जाता है। एतस्मात् जायते प्राणः—इसी ब्रह्म से जब वह माया की उपाधि धारण करता है, प्राण की उत्पत्ति होती है, वास्तव में उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि, वाचारम्भणं विकारो नामधेयम् । प्राण नाम का विकार वाणी का विलास और नाममात्र है, अतः प्राण भी अनृत ही है, सत्य तो केवल ब्रह्म है।

4

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

इसी प्रकार **मनः सर्वेन्द्रियाणि च**—मन, सब ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ तथा उनके विषय उत्पन्न होते हैं। **खम्, वायु, ज्योतिः, आपः च विश्वस्य धारिणी पृथ्वी**—जैसे मन इन्द्रियादिक मायोपहित ब्रह्म से उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार पंच महाभूत—आकाश, वायु, तेज, जल और समस्त विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी भी उसीसे उत्पन्न हुए हैं और क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध गुणों से युक्त हुए हैं।

मुण्डकोपनिषद के दूसरे मुण्डक प्रथम खंड में लिखा है कि ब्रह्म 'अप्राणो ह्यमनाः' विना प्राण के और विना मन के है, फिर उसमें से प्राण की उत्पत्ति कैसे हुई ? मुख्य ब्रह्म प्राण और मन आदि उपाधियों से रहित है। परन्तु लीलावश जब वह ब्रह्म सृष्टि की रचना करता है, तो माया की उपाधि धारण करता है। श्रुति भगवती का प्रयोजन सृष्टि में सत्यत्व बुद्धि उपजाना नहीं है, बल्कि ब्रह्म के अनुसंधान के लिये पहले सृष्टि का ब्रह्म में अध्यारोप किया जाता है, पुनः उसका अपवाद किया जाता है, और उसे ब्रह्म में ही लय किया जाता है। ब्रह्म विद्या समझाने की यही शैली है।

'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या औषधयः।' तैत्तिरीयोपनिषद्, ब्रह्मवल्ली, प्रथम अनुवाक।

उस आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषध उत्पन्न हुए।

यदि श्रुति का तात्पर्य सृष्टि को सत्य बताना होता तो उसकी उत्पत्ति भी एक ही प्रकार से बताती, परन्तु ऐसा है नहीं।

तथाऽऽत्माकाशप्रमुखा सृष्टिरेकत्र कथ्यते।
अन्यत्र तेजः प्रमुखा प्राणाद्या ऽन्यत्र वर्णिताः॥

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अक्रमेण श्रुताऽन्यत्र तस्मात्सृष्टिर्न युज्यते।
निष्फलत्वाच्छ्रुतेः सृष्टौ तात्पर्यं नैव विद्यते ।।

तैत्तिरीयोपनिषद् में सृष्टि की उत्पत्ति आकाशादि से आरंभ बताई है, छान्दोग्योपनिषद् में पहले तेज की उत्पत्ति बताई है, मुण्डकोप्रनिषद् में पहले प्राण की उत्पत्ति बताई है। अन्य श्रुतियों में सृष्टि की स्वप्नवत् क्रमरहित उत्पत्ति बताई है। अतः श्रुति का तात्पर्य असत् और निष्फल होने से सृष्टि के सत्यत्व दर्शाने में नहीं है ।।१५।।

'अचिन्त्यमव्यक्तमनन्तरूपं' इस मंत्र से आरम्भ करके 'एतस्माज्जायते प्राणः' इस मंत्र के अन्त तक ब्रह्माजी ने 'तत्' तथा 'त्वम्' पदों का अर्थ शोधन किया है। तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर होता है और त्वम्पद का वाच्यार्थ जीव होता है। ईश्वर की कारण उपाधि माया और जीव की कार्य उपाधि अविद्या होती है। इन उपाधियों में विरोध होने के कारण ईश्वर और जीव में एकता नहीं हो सकती, क्योंकि ईश्वर में सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्तादि लक्षण होते हैं, और जीव में अल्पज्ञता अल्पशक्तिमत्तादि लक्षण होते हैं। इन उपाधियों के कारण ईश्वर जीव में भेद सा दिखाई पड़ता है पर वास्तव में भेद नहीं है। उपाधियों के त्यागने के उपरान्त चैतन्यांश दोनों में समान रहता है, अतः उनमें एकता है। यह बात 'तत्त्वमसि' (वह परमात्मा तू ही है) महावाक्य से सिद्ध होती है। तत्पद का लक्षितार्थ अचिन्त्य, अव्यक्त, सच्चिदानन्द, अनन्त लक्षण वाला ब्रह्म है और त्वम्पद का लक्षितार्थ भी सच्चिदानन्द लक्षण वाला प्रत्यक् सर्वान्तरात्मा, कूटस्थ चैतन्य है। तीन प्रकार के जीव, उनके तीन ईश्वर, तीन अवस्था, तीन प्रकार के भोग परमार्थतः ब्रह्म से भिन्न नहीं हैं, क्योंकि उनका अवसान ब्रह्म में ही होता है। 'यस्मिन् लयं याति पुरत्रयं च।' जैसे रस्सी में सर्प लय होता है, वैसे ही ब्रह्म में जीव लय होते हैं, क्योंकि वे ब्रह्म में अध्यस्त, कल्पित हैं। कल्पित वस्तु की सत्ता अपने अधि-

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ष्ठान से भिन्न नहीं होती। अगले मंत्र में महावाक्य का अर्थ बताकर 'तत्' और त्वं पदों की एकता सिद्ध करते हैं ।।१५।।

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्याऽऽयतनं महत् ।
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ।।१६।।

अर्थ—जो परम ब्रह्म, सर्वभूतों का आत्मा, विश्व का महान् आधार, सूक्ष्म अविद्या से भी अधिक सूक्ष्म, त्रिकालाबाध्य सत्तावान, तथा तत् पद का लक्ष्यार्थ है, वही त्वम्पद का लक्ष्यार्थ तू है। तू ही वह परम ब्रह्म है।

व्याख्या—पूर्व के मंत्रों में यह बताया है कि तीनों पुरों में रमण करने वाला जीव नहीं है, जीवरूप से वह परम ब्रह्म ही है। इस मंत्र में महावाक्य का अर्थ निरूपित करते हैं। **यत् परम् ब्रह्म सर्वात्मा**—जो परम अति उत्कृष्ट ब्रह्म यानी बृहद्—आकाशादि से भी महान् होने से ब्रह्म, सब के अन्तःकरण में विराजमान होने से सर्वात्मा है **विश्वस्य आयतनम् महत्**—जड जंगम ब्रह्माण्ड का, जाग्रत्स्वप्नादि त्रिधामों का, भूतकालीन-वर्तमान-भावी सृष्टियों का जो महान् आधार, अधिष्ठान है, **सूक्ष्मात् सूक्ष्मतरम् नित्यम्**—सूक्ष्म महाभूतों से भी सूक्ष्म माया का भी जो कारण, आश्रय है, और जो नित्य, अविनाशी, त्रिकालाबाध्य है **तत् त्वम् एव**—वह तत् पद से लक्षित होने वाला ब्रह्म तू ही है, तू उससे भिन्न नहीं। देखिये ब्रह्मविद्या की उदारता और विचित्रता—एक जन्ममरणधर्मा दीनदुःखी कंगाल से भासने वाले जीव को अज अजर अमर अविनाशी, अनन्त ब्रह्मपद दे रही है। है किसी अन्य शास्त्र का इतना सत्य एवं व्यापक साहस? इसीलिये भगवान् कृष्ण ने कहा है 'अध्यात्म विद्या विद्यानाम्'। सब विद्याओं में मैं ब्रह्मविद्या हूँ। यहाँ अज्ञानी शंका उठाता है कि मैं तो कर्ता भोक्ता दीनदुःखी जीव हूँ, मैं तत्पद से लक्षित, ब्रह्म से, जिसके सच्चिदानन्द स्वरूप लक्षण हैं,

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

भिन्न हूँ। मैं किस प्रकार ब्रह्म हो सकता हूँ? इस पर कहते हैं—त्वम् एव तत्—ऐसा मत कहो, तू अविद्या से अपने को कर्ता भोक्ता जानता है, परमार्थ से तू ही वह "ब्रह्म" है।

महावाक्य के अर्थ पर कुछ विशेष प्रकाश डालते हैं। 'तत्त्वमसि' सामवेद की छान्दोग्योपनिषद का महावाक्य है। ६।८।७

उद्दालक मुनि ने नव (९) वार अपने पुत्र श्वेतकेतु को 'तत्त्वमसि' का उपदेश किया था। तत् पद का वाच्यार्थ असंसारी सर्वज्ञ ईश्वर कहा जाता है। त्वम् और अहम् इन दोनों पदों का वाच्यार्थ संसारी अज्ञ जीव कहा जाता है, फिर किस प्रकार इन दोनों का यानी तत् और त्वम्पदों का तादात्म्य संभव हो सकता है?

तत्पद का लक्ष्यार्थ सत्यज्ञानानन्तानन्द लक्षणवाला ब्रह्म है और त्वम्पद का लक्षितार्थ कूटस्थ सर्वान्तर प्रत्यगात्मा है। ये दोनों एक ही वस्तु हैं। संज्ञाभेद होने पर भी वस्तुभेद नहीं है। तत्त्वम्पदों के वाच्यार्थों में विरोध है, उपाधियों के कारण। ईश्वर की उपाधि माया कहलाती है और जीव की उपाधि अविद्या। इन विरोधी उपाधियों को भाग-त्याग-लक्षणा से त्याग कर चैतन्यांश में एकता सम्भव है।

तत् और त्वम्पदों में अखण्डैकरस तादात्म्य है, संबंध अथवा संसर्ग (सह अस्तित्व) नहीं। ब्रह्म की कल्पित उपाधि यद्यपि अनादि है, तो भी ब्रह्मज्ञान से निवृत्त की जाने के कारण अन्तवती और मिथ्या है। परिकल्पित और असद्भूत होती हुई भी यह त्रिगुणात्मिका प्रकृति दो प्रकार की है।

रजोगुण और तमोगुण को दबाने वाली विशुद्ध सत्त्वगुणा प्रकृति माया कहलाती है। रजोगुण और तमोगुण से स्वयं दब जाने वाली मलिनसत्त्वगुणा प्रकृति अविद्या कहलाती है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

माया के सत्त्वांश में प्रतिबिम्बित परमात्मा उस माया को वश में करके सर्वज्ञ ईश्वर कहा जाता है। अविद्या के सत्त्वांश में पुनः प्रतिबिम्बित वही परमात्मा अविद्या के वश में हुआ अस्वतंत्र, कर्ता भोक्ता संसारी जीव कहा जाता है। यदि ईश्वर की उपाधि माया और जीव की उपाधि अविद्या दूर हो जायें तो अवशेष चैतन्यांश रहता है। वही तत् और त्वम् दोनों पदों का लक्ष्यार्थ ब्रह्म है। अतः 'तत् त्वमेव त्वमेव तत्' परमेश्वर तू ही है, तू ही परमेश्वर है, इस प्रकार यह उपनिषद उपदेश करती है।

सूतसंहिता में इस प्रकार दिया है—

त्वं शब्दार्थो य आभाति सोऽहंशब्दार्थ एव हि।
यो ऽहंशब्दार्थ आभाति स त्वंशब्दार्थ एव हि॥७६॥
त्वमहंशब्द लक्ष्यार्थः साक्षात्प्रत्यक् चितिः परा।
तच्छब्दस्य लक्ष्यार्थः सैव नात्र विचारणा॥७७॥
सूतसंहिता यज्ञवैभव खंड ४।५।

'तत्त्वमसि' महावाक्य में जो 'त्वम्' शब्द का अर्थ है, वही 'अहं ब्रह्मास्मि' महावाक्य में 'अहम्' शब्द का अर्थ है। त्वम् और अहम् इन दोनों शब्दों का लक्ष्यार्थ साक्षात् चेतन प्रत्यगात्मा है। और यही लक्ष्यार्थ 'तत्' पद का भी है। इसमें सन्देह नहीं करना।

यः पदद्वयलक्ष्यार्थस्तस्मिन्भेदः प्रकल्पितः।
माया विद्यात्मकोपाधिभेदेनैव न वस्तुतः॥४२॥

तत् और त्वम् इन दोनों पदों का जो एक ही लक्ष्यार्थ है उस में माया और अविद्या उपाधि के भेद से भेद कल्पित किया गया है, वास्तव में भेद नहीं है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्वतः सिद्धैकताज्ञानं व्युदस्य श्रुतिरादरात् ।
स्वभावसिद्धं एकत्वं बोधयत्यधिकारिणः ॥४३॥
सूतसंहिता, यज्ञवैभवखंड ४।८।

तत् और त्वम् पदों में जो स्वतः सिद्ध एकता है, उसका आच्छादक अज्ञान है, उसके निवारण होने पर श्रुति भगवती बड़े आदर से तत्त्वम्पदों की स्वभाव सिद्ध अखंडैकरसता का अधिकारी को बोधन कराती है ॥१६॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादि प्रपंचं यत्प्रकाशते ।
तद्ब्रह्माऽहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥१७॥

अर्थ—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि प्रपंच जिस स्वयं प्रकाश अधिष्ठान में प्रकाशित होते हैं, उस सर्वाधिष्ठान ब्रह्म को निजरूप से अपना आपा अनुभव से जान कर मुमुक्षु सर्ववन्धनों से छूट जाता है।

व्याख्या—यह मंत्र पूर्वोक्त श्रुति 'सूक्ष्मातसूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ।' का अनुवाद है। ज्ञानफल भी इसी मंत्र में बताते हैं।

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-आदि प्रपञ्चम्—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, आदि पद से मूर्च्छा, समाधि, इस समस्त प्रपंच को यत् प्रकाशते—जो ब्रह्म तत्त्व प्रकाशित करता है, यानी जो ब्रह्म अविद्या के योग से जाग्रदादि धाम, विश्वतैजसादि जीव, विराटहिरण्यगर्भादि ईश्वर, स्थूलसूक्ष्मादि पंचमहाभूतों—इन प्रपंचों के रूप से प्रकाशित होता है, तत् ब्रह्म अहम् इति ज्ञात्वा—उस ब्रह्म को अपना आपा, निजीस्वरूप जान कर, 'वह ब्रह्म मैं ही हूँ' इस प्रकार उसका निर्विकल्प समाधि में अहं रूप से साक्षात्कार करके, क्या होता है? सर्वबन्धैः प्रमुच्यते—सब बन्धनों से, अहंकार से लेकर स्थूलदेह तक के बन्धनों से छूट जाता है, मुक्त हो जाता है, ब्रह्मपद प्राप्त कर लेता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हे अधिकारी शिष्य आश्वलायन! मैंने जाग्रदादि को 'अहम्' रूप से जाना है, अतः मैं सब बंधनों से मुक्त हूँ। मुझ जीवन्मुक्त का अब तुम अनुभव सुनो जिस ब्रह्म को 'विशद', विशोक, अचिन्त्य अव्यक्त, अनन्त, शिव, प्रशान्त, ब्रह्मयोनि, आदि-अन्त विहीन, विभु, एकतत्त्व, चिदानन्द, अरूप, अद्भुत, अमृत, आधार, अखण्डबोध, समस्तसाक्षी, जाग्रत्स्वप्नादि का प्रकाशक बताया है, वह ब्रह्म परमार्थ दृष्टि से स्वयं मैं ही हूँ, और हे आश्वलायन! तुम भी वही हो ।।१७।।

त्रिषुधामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ।
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ।।१८।।

अर्थ—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन धामों (अवस्थाओं) में जो भोग्यवस्तु, भोग करने वाला तथा भोग विषय रूप से हैं, उनसे सब भिन्न लक्षणों वाला मैं सर्वसाक्षी शुद्धज्ञानमात्र, सदा शिवरूप मैं हूँ।

व्याख्या—अब ब्रह्माजी छः मन्त्रों में अपना अनुभव बताते हैं। तात्पर्य यह है कि हे आश्वलायन! मैंने इस ब्रह्मविद्या का अभ्यास किया था, मैंने जो अनुभव किया वह तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने के लिये बताता हूँ। यह मुक्तावस्था का अनुभव है। **त्रिषु धामसु**-जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में **यत् भोग्यं भोक्ता भोगः च यत् भवेत्**—जो भोग के योग्य वस्तु है, जो भोक्ता जीव है, जाग्रत्-कालीन अवस्था का भोक्ता विश्व नामक जीव, स्वप्नावस्था का भोक्ता तैजस नामक जीव, तथा सुषुप्त्यवस्था का भोक्ता प्राज्ञ नामक जीव, जो भोग यानी अवस्था भेद से स्थूल सूक्ष्म कारणरूप भोग है चकार से इन तीन अवस्थाओं के जीवों के जो तीन प्रकार के ईश्वर हैं उनके समष्टि स्थूल-सूक्ष्म-कारण भोग होते हैं **तेभ्यः विलक्षणः**—मैं ब्रह्मवेत्ता ब्रह्माजी उन धामों से, भोगों से तथा भोक्ताओं से भिन्न हूँ, विपरीत लक्षण वाला हूँ, क्यों? क्योंकि **अहम् साक्षी चिन्मात्रः सदाशिवः**—

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

मैं परमार्थ से इन धामभोग भोक्तादि का साक्षी, यानी तटस्थ होकर जानने वाला द्रष्टा हूँ, इन साक्ष्य वस्तुओं के धर्म मुझ साक्षी में प्रविष्ट नहीं कर सकते। एक बात और बताता हूँ, मैं साक्षी भी साक्ष्य की की अपेक्षा से हूँ, वस्तुतः मैं शुद्ध चेतनमात्र, ज्ञानस्वरूप, बोधरूप, अनुभव मात्र हूँ, अतः सदा शिव यानी आनन्दरूप, मंगलात्मक हूँ।

साक्षी साक्ष्य से विलक्षण होता है। साक्षी में साक्ष्य के धर्म प्रवेश नहीं करते। साक्षी सदा चेतन ही हुआ करता है। मिट्टी का ढेला साक्षी नहीं हो सकता। ज्ञानवान की दो अवस्थाएँ हुआ करती हैं। एक तो निर्विकल्प समाधि अवस्था, और दूसरी समाधि से उत्थितावस्था। समाधि में अपने सच्चिदानन्द निर्विकल्प अद्वैत स्वरूप में ज्ञानवान् अवस्थित रहता है, उस काल में द्वैत का अत्यन्ताभाव रहता है। समाधि से जागने पर ज्ञानवान् अपने को सर्वसाक्षी जानता है, और साक्ष्य की अनुभूति करता है। यह जगत् देह साक्ष्य होता है, परन्तु तो भी ज्ञानवान् इसको ब्रह्मरूप से ही जानता है, अपने से भिन्न नहीं। नामरूप को मिथ्या जानता है, अतः उसके भीतर जो अधिष्ठान व्याप्त है, उसको अपना आपा ही जानता है। इस सृष्टि का सर्ग, रक्षा तथा लय अधिष्ठान में ही जानता है, और वह चैतन्या-धिष्ठान अपने आप है ॥१८॥

इस अनुभव को ब्रह्माजी अगले मंत्र में दर्शाते हैं।

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥१९॥

अर्थ—समस्त विश्व मुझमें ही उत्पन्न है, और उत्पन्न होकर मुझ में ही प्रतिष्ठित और अन्त में मुझमें विनाश को प्राप्त होता है, वही अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याख्या—जाग्रदादि प्रपंच से आप विलक्षण हैं तो रहें, परन्तु आपसे भिन्न प्रपंच तो रह गया। प्रपंच के रहते अद्वैत कैसे सिद्ध होगा? इस शंका को दृष्टि में रख कर कहते हैं **मयि एव सकलम् जातम्**—यह सकल प्रपंच मुझ मायोपहित ब्रह्म में उत्पन्न हुआ है, यानी मुझ आधार में अध्यस्त है, प्रकल्पित है, जिस प्रकार कि सर्प रज्जु में कल्पित होता है। वह कल्पित सर्प मिथ्या होता है और वास्तव में रज्जु से अभिन्न होता है। मैं ब्रह्म ही अविद्यायोग से प्रपंचरूप से प्रकाशित होता हूँ। अधिष्ठान ही अध्यस्त वस्तु हुआ करती है; अतः यह प्रपंच मुझसे अभिन्न मैं ही हूँ।

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः।
तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत् ।।४।५।।

योगशिखोपनिषद्

सब भूतजात परमात्मा ब्रह्म से ही उत्पन्न होते हैं, अतः वे सब ब्रह्म ही हैं—ऐसा निश्चय करना चाहिये।

रज्ज्वज्ञानात्क्षणेनैव यद्वद्रज्जुर्हि सर्पिणी।
भाति तद्वच्चितिः साक्षाद्विश्वाकारेण केवला ।।४४।।

अपरोक्षानुभूतिः।

रज्जु के अज्ञान से जैसे तत्काल रज्जु ही सर्पिणीरूप से प्रकट होती है, वैसे ही शुद्ध चेतन ब्रह्म तत्काल ही विश्वरूप से भासता है।

मयि सर्वं प्रतिष्ठिम्—जैसे यह प्रपंच, माया से लेकर स्थूल पर्यन्त मुझ से ही उत्पन्न हुआ है, वैसे ही मुझ सर्वाधिष्ठान चैतन्यात्मा में प्रतिष्ठित है, इसकी रक्षा और स्थिति मुझ में ही है। मैं ब्रह्म ही इसका आधार हूँ। **मयि सर्वम् लयम् याति**—और इस प्रपंच का पर्यवसान मुझ में ही है, अधिष्ठान का ज्ञान ही अध्यस्त वस्तु का नाश है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

रज्जुरूपे परिज्ञाते सर्पखण्डं न तिष्ठति।
अधिष्ठाने तथा ज्ञाते प्रपंचः शून्यतां व्रजेत् ।।९६।।
अपरोक्षानुभूतिः ।।

जैसे रज्जु का स्वरूप जान लेने पर सर्प का खण्ड भी नहीं रहता, उसी प्रकार अधिष्ठान (ब्रह्म) का साक्षात् कर लेने पर प्रपंच अत्यन्त अभाव को प्राप्त हो जाता है।

तत् अद्वयम् ब्रह्म अहम् अस्मि—जो ब्रह्म प्रपंच की उत्पत्ति-स्थिति-नाश का अधिष्ठान है, वह एक अद्वितीय तत्त्व है, 'एकमेवाद्वितीयम्' इति छान्दोग्यश्रुति ६।२।१, और वह मैं ही हूँ, वह सर्वाधार ब्रह्म मुझ से भिन्न नहीं है। 'यस्मिँल्लयं याति पुरत्रयं च।' इसी श्रुति का प्रस्तुत मंत्र अनुवाद है। तात्पर्य यह है कि मैं विजातीय-सजातीय-स्वगतभेद शून्य निर्भेद आनन्दघन चेतन ब्रह्म हूँ, 'तत्त्वमेव त्तमेव तत्।' प्रपंच की मुझ से भिन्न प्रतीति मिथ्या है। यह प्रपंच मुझसे अभिन्न होने के कारण मेरे अद्वितीय तत्त्व होने में बाधक नहीं है। सृष्टि का उदय, सृष्टि की स्थिति और लय अवस्था में भी मैं एकरस, अविकारी, अद्वितीय तत्त्व रहता हूँ, और वह मेरा निजीरूप ही है, यह भाव है ।।१९।।

अणोरणीयानहमेव तद्वन्-
महानहं विश्वमहं विचित्रम्।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो
हिरण्मयोऽहं शिवरूपमस्मि ।।२०।।

अर्थ—मैं अणु (सूक्ष्म) पदार्थ से भी सूक्ष्मतर हूँ, वैसे ही मैं महत् पदार्थ से भी महत्तर हूँ, मैं बहुरंग वाला विश्व हूँ। मैं पुरातन हूँ, मैं औपनिषद पुरुष (आत्मा) हूँ, मैं सर्वेश्वर हूँ, मैं ज्योतिर्मय हूँ, मैं मंगलात्मक रूप हूँ।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

व्याख्या—ब्रह्मा जी अपने स्वरूप में समाहित हुए अनिर्वचनीय स्वरूपानन्द मस्ती से झूम रहे हैं और अपना अनुभव बखान रहे हैं। **अणोः अणीयान् अहम् एव**— मैं आत्मा ही अणु से भी अणुतर, सूक्ष्म-पदार्थों से भी सूक्ष्मतर हूँ। अणु परिमाण वाली जो भी वस्तु है वह मुझ नित्य स्वरूप आत्मा से ही आत्मवान यानी स्वरूप सत्तावान है। मुझ से परित्यक्त होने पर वह सत्ताशून्य हो जाती है, अतः सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु भी मैं ही हूँ **तद्वत् महान् अहम्**—जैसे मैं आत्मा सूक्ष्म अणु से भी सूक्ष्मतर हूँ, वैसे ही महत्परिमाण वाली पृथ्वी आदि वस्तुओं से भी मैं महत्तर हूँ, क्योंकि मैं अनन्त हूँ, पृथ्वी आदि की तो सीमा है, मेरी नहीं, अतः आत्मा महान् से भी महत्तर है **विश्वम् अहम् विचित्रम्**—मैं सूर्य-चन्द्रमा-नक्षत्र-गिरि-नद-वन आदि से युक्त, समस्त विचित्र प्राणी समुदाय से युक्त विश्व हूँ। विश्व मुझ में अध्यस्त है। एक ही विश्व मूढ़ों को वास्तविक, जिज्ञासुओं को अनिवर्चनीय, ज्ञानियों को ब्रह्मरूप भासने से विचित्र है। **पुरातनः अहम्**—मैं नवीन पुरातन हूँ, अर्थात् सर्वकाल से मैं हूँ, और काल की उत्पत्ति से भी पूर्व हूँ।

अभातरूपेण तथैव सर्वदा, विभातरूपेण च भानरूपतः।
अभानरूपेण च सर्वरूपतः स्फुरामि देवो ऽहमतः पुरातनः ।।

सूतसंहिता ४।८।५२

अभानरूप से यानी जब सृष्टि अव्यक्त थी नामरूप प्रकट नहीं हुए थे, उस समय भी, और जब सृष्टि व्यक्त हुई, उस समय भी मैं चैतन्य आत्मा प्रकाशित था। जिस काल में अज्ञानियों को मेरा भान नहीं होता है, उस समय भी सर्वनामरूप से मैं चैतन्य ही आत्मा प्रकाशित रहता हूँ। सर्वकाल सर्वावस्था, सर्वत्र, सर्वदा मैं प्रकाशित हूँ, मेरा तिरोहन कभी नहीं होता, अतः मैं पुरातन कहलाता हूँ।

पुरुषः अहम् ईशः—उपनिषदों में वर्णित सहस्रशीर्ष पुरुष मैं ही हूँ, दश छिद्रों वाले पुर, शरीर में शयन करने वाले, यानी अन्तःकरण

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

में 'अहं अहम्' करने स्फुरण करने वाले को पुरुष कहते हैं, अथवा समस्त विश्व को पूर्ण करन से मैं पुरुष कहलाता हूँ, वह पुरुष-आत्मा मैं ही हूँ। मैं ही माया उपाधि स्वीकार करके सर्वज्ञ ईश्वर हूँ। मैं ही अपनी विविध शक्तियों से सर्व का ईशन, नियमन करने वाला ईश्वर हूँ। हिरण्मयः अहम्—मैं ही स्वयं ज्योतिः हूँ, ज्ञान प्रकाश मैं हूँ, अथवा सूर्य आदि नक्षत्रों में मैं ही अवस्थित हूँ। **शिवरूपम् अस्मि**—मैं ही शिवरूप, मंगलरूप ब्रह्म हूँ। ॥२०॥

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः
पश्याम्यचक्षुश्च शृणोम्यकर्णः।
अहं विजानामि विविक्तरूपो
न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥२१॥

अर्थ—मेरे हाथ-पाँव नहीं हैं तो भी मेरी अचिन्त्य शक्ति है। मैं विना नेत्रों के देखता हूँ तथा बिना कानों के सुनता हूँ। मैं साक्षी-रूप से सर्व को जानता हूँ। मेरा जाननेवाला कोई नहीं। मैं सर्वकाल में बोधस्वरूप हूँ।

व्याख्या—**अपाणिपादः अहम् अचिन्त्यशक्तिः**—मुझ निरुपाधिक ब्रह्म के यद्यपि हाथ-पैर नहीं हैं, तो भी मैं अचिन्त्य अनन्त शक्तिवाला हूँ। 'अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता।' श्वेताश्वतरश्रुतिः ३।१९। इस श्रुति का ऊपर कहा हुआ मंत्र अनुवाद है। ब्रह्म के यद्यपि पैर नहीं है तो भी दूरगामी है, हाथ न होने पर भी सब को ग्रहण करनेवाला है। नेत्रहीन होने पर भी यह सब को देखता है, कर्णहीन होने पर भी सब कुछ सुनता है। यद्यपि इसके मन नहीं है तब भी सर्वज्ञ होने के कारण जानने योग्य वस्तुओं को जानता है, किन्तु उसको जाननेवाला कोई नहीं है। 'परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।' श्वेताश्वतर श्रुतिः ६।८ । उसकी पराशक्ति नाना प्रकार से सुनी जाती है । ज्ञान क्रिया और बल क्रिया इसकी स्वभावसिद्ध शक्तियाँ हैं । 'मनसो जवीयः' ईशावास्यश्रुतिः ४ । आत्मा मन से अधिक वेगवान है । वह ब्रह्म सर्वकर्मेन्द्रिय-रहित है, परन्तु सोपाधिक ब्रह्म में सर्वेन्द्रियों का आभास मिलता है । 'सर्वेन्द्रिगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।' इति श्वेताश्वतरश्रुतिः ३।१७ । वह समस्त इन्द्रिय वृत्तियों से अवभासित होता हुआ भी समस्त इन्द्रिय-रहित है ।

पश्यामि अचक्षुः च—मैं विना नेत्रों के देखता हूँ, मैं सर्वज्ञ ईश्वर-रूप से सब कुछ देखता हूँ, 'सहस्राक्षःसहस्रपात्' पुरुषसूक्त । वह अनन्त नेत्रवाला तथा अनन्त पैर वाला है ।

शृणोम्यि अकर्णः—मैं बिना कानों के सुनता हूँ । समस्त प्राणियों के कान मेरे ही हैं, यानी मेरे प्रकाश से प्रकाशित होकर सुनते हैं । **अहम् विजानामि विविक्तरूपः**—मैं साक्षी रूप से सब को जानता हूँ । 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा, नान्योऽतोऽस्ति श्रोता, नान्योऽतोऽस्ति मन्ता, नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता ।' बृहदारण्यकश्रुतिः ३।७।२३ । आत्मा से भिन्न कोई द्रष्टा नहीं है, न उससे भिन्न कोई श्रोता है, न उससे भिन्न कोई मनन करनेवाला है, और न ही उससे भिन्न कोई जाननेवाला है ।

न च अस्ति वेत्ता मम—और न ही मुझसे भिन्न कोई मुझको जाननेवाला है, क्योंकि मैं स्वयंसाक्षी हूँ, मेरा कोई साक्षी नहीं है । 'विज्ञातारं अरे केन विजानीयात् ।' ३ बृह० श्रुतिः २।४।१४ । अरे ! उस विशेष ज्ञाता को किस प्रमाण से जाना जाये ।

चित् सदा अहम्—मैं सर्वकाल में शुद्धज्ञानरूप हूँ, मुझे अज्ञान किसी काल में स्पर्श नहीं कर सकता ।।२१।।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वेदैरनेकैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।
न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो
न जन्म-देहेन्द्रिय-बुद्धिरस्ति ॥२२॥

अर्थ—चारों वेदों से मैं ही जानने योग्य हूँ, मैं ही वेदों का कर्ता हूँ, मैं ही वेदों के रहस्य जानेवाला हूँ, न मुझे पुण्य-पाप लिपायमान करते हैं, न मेरा नाश है, न जन्म, त्रिदेह, इन्द्रियाँ, वुद्धि से मेरा संवंध नहीं है।

व्याख्या—वेदैः अनेकैः अहम् एव वेद्यः—चारों वेदों से मैं आत्मा ही जानने योग्य हूँ। सव वेदवाक्यों–महावाक्य तथा अवान्तर वाक्य—का प्रयोजन अद्वैत व्रह्म प्रतिपादन करने में है। वेद भगवान मुझ आत्मा को ही लक्षित करके कहते हैं **वेदान्तकृत्**—मैं ही उपनिषदों का कर्ता हूँ, **वेदवित् एव च अहम्**—और मैं ही वेदों के रहस्य को जानने वाला हूँ। तात्पर्य यह है कि यदि वेदभगवान महावाक्य द्वारा जीवात्मा और परमात्मा की एकता न वताते, तो इनकी एकता अन्य किसी प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकती है। **न पुण्यपापे**—मुझे न पुण्य स्पर्श करता है और न पाप ही, क्योकि मैं आत्मा असंग हूँ, 'असंगोऽह्ययं पुरुषः' इति श्रुति, आत्मा असंग है। जिनको स्थूल देह में अभिमान होता है वे ही शुभ अशुभ कर्म करते हैं और पुण्य-पाप के भागी होते हैं। 'एष नित्यो महिमा व्राह्मणस्य न कर्मणा वर्धतें नो कनीयान्।' वृह० श्रुतिः ४।४।२३ व्रह्मवेत्ता की यह नित्य महिमा है कि वह न शुभकर्म से वढ़ता है, और न अशुभ कर्म से घटता है।

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥
१८।१७॥गीता

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हे अर्जुन ! जिसके अन्तःकरण में कर्तापन का अहंकार नहीं है तथा जिसकी बुद्धि कर्मों से लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष तीनों लोकों को मार कर भी वास्तव में न तो मारता है और न ही पाप से बँधता है ।

अश्वमेधसहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च ।
कुर्वन्नपि न लिप्येत यद्येकत्वं प्रपश्यति ।।
४।८।३४।। सूत संहिता

सहस्र अश्वमेध करता हुआ भी तथा सैकड़ों ब्रह्महत्या करता हुआ भी पुण्य-पाप से लिपायमान नहीं होता, यदि उसने अद्वतीय ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया हो । 'असंगो न हि सज्जते' इति बृहद० श्रुतिः ४।५।१५ । असंग आत्मा लिपायमान नहीं होता ।

मम न अस्ति नाशः––मेरा नाश नहीं है, क्योंकि मैं अमर हूँ **न जन्म देहेन्द्रिय-बुद्धिः अस्ति** – और मेरा जन्म भी नहीं, अतः नाश भी नहीं है, 'न जायते म्रियते' इति कठश्रुतिः १।२।१८ । न आत्मा जन्म लेता है न मरता है । त्रिदेह, स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर, कर्मज्ञानेन्द्रिय तथा मन बुद्धि से भी मेरा संवंध नहीं है, ये सब मुझमें कल्पित हैं । 'नाहं देहो न मे देहः ।' ब्रह्मानुचिन्तनम् ।२७ । न मैं देह हूँ, न मेरा देह है । इस मंत्रभाग में आत्मा में पुण्य-पाप, जन्म-मृत्यु, देह, इन्द्रिय, मन-बुद्धि का होना निवारित किया गया है, यानी ये आत्मा नहीं हैं ।

पुण्यानि पापानि निरिन्द्रियस्य,
निश्चेतसो निर्विकृते-र्निराकृतेः ।
कुतो ममाखण्ड-सुखानुभूते–
र्ब्रूते ह्यनन्वागतमित्यपि श्रुतिः ।।
५०४।। विवेकचूडामणिः

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

वाणी कर्मेन्द्रियरहित, चित्त, विकार तथा आकृति से रहित मुझ अखण्ड आनन्दोपभोक्ता को पुण्य या पाप कैसे हो सकते हैं? और 'अनन्वागतं पुण्येन अनन्वागतं पापेन।' यह बृह० की ४।३।२२ श्रुति भी ऐसा ही बताती है। सुषुप्तावस्था में वह पुण्य से असंबद्ध, पाप से असंबद्ध होता है ।।२२।।

न भूमिरापो न च वह्निरस्ति
न चानिलो मेऽस्ति न चाम्बरं च।
एवं विदित्वा परमात्मरूपं
गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ।।२३।।
समस्तसाक्षिं सदसद्विहीनम्
प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ।।२४।।

इति कैवल्योपनिषदि प्रथमः खण्डः ।। ।।

अर्थ—पृथ्वीतत्त्व, जलतत्त्व तथा अग्नितत्त्व आत्मा नहीं हैं न ही वायु का आत्मा से स्पर्श है और न ही आकाश आत्मा है। इस प्रकार बुद्धिरूपी गुफा में अहंरूप से स्फुरण करनेवाला, निरवयव, अद्वितीय, सर्वसाक्षी, सत् असत् से विलक्षण परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करके शुद्ध परमात्मा (ब्रह्म) रूप को ही प्राप्त होता है।

व्याख्या—इस मंत्र में पंचमहाभूतों का आत्मा होना निवारित करते हैं। **न भूमिः न आपः**—आत्मा पृथ्वीतत्त्व नहीं है, और न ही आत्मा पृथ्वीतत्त्व का कारण जल तत्त्व, **न च वन्हिः अस्ति**—और न ही आत्मा जल का कारण अग्नितत्त्व है, **न च अनिलः मे अस्ति**—न ही अग्नि का कारण वायुतत्त्व आत्मा है यानी न ही वायुतत्त्व से मेरा संबंध है, **न च अम्बरम् च**—और न ही वायु के कारण आकाश मुझ आत्मा से सम्बन्धित है। चकार से आकाशतत्त्व का कारण

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

अज्ञान भी आत्मा नहीं है। ये सब मुझमें कल्पित हैं, अतः मिथ्या हैं।

एवम् विदित्वा परमात्मरूपम्—इस प्रकार परम आत्मा का साक्षात्कार कर के जैसा कि मैंने किया है। हे आश्वलायन! ब्रह्मविद्या के जानने का जैसा मैंने उपदेश दिया है, उस पर आचरण करके तू भी आत्मदर्शन कर सकता है, किस स्थान पर? **गुहाशयम्**—अन्तःकरणरूपी गुहा के भीतर शयन करने वाले यानी अन्तःकरण के भीतर, बुद्धि का साक्षी होकर, बुद्धि को प्रकाशित करता हुआ 'अहं अहं' स्फुरण करनेवाले **निष्कलम् अद्वितीयम्**—निरवयव, भेदरहित, अद्वैत एकरस परमात्मा के दर्शन कर सकता है ।।२३।।

और कैसा है वह? **समस्त-साक्षिम्**—समस्त स्थावर जंगम, प्रपंच का साक्षी, **सत्-असत् विहीनम्**—न वह सत् है, न असत्, वह अनिर्वचनीय, मन-वाणी का अविषय है। गुहाशायी, निष्कल, अद्वितीय, समस्त साक्षी, सदसद्रहित परमात्मा के स्वरूप का अहम् रूप से दर्शन करके, क्या फल मिलता है? **प्रयाति शुद्धम् परमात्म-रूपम्**—वह साक्षात्कर्ता निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप को ही प्राप्त होता है, क्योंकि उसने ब्रह्म को निजरूप से जाना है। ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म ही होता है। 'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति।' इति मुण्डकश्रुतिः।

दर्शनादर्शने हित्वा स्वयं केवलरूपतः।
यस्तिष्ठति स तु ब्रह्मन्ब्रह्म न ब्रह्मवित्स्वयम् ।।

जो द्वैतदर्शन तथा अदर्शन दोनों की उपेक्षा करके केवल अपने आत्मस्वरूप में अवस्थान करता है, हे ब्राह्मण! वह न केवल ब्रह्मवेत्ता ही है, वरन् वह तो स्वयं ब्रह्म ही है।

'परेण नाकं निहितं गुहायाम्' 'विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति' इस प्रकार ब्रह्मा जी ने जो आरम्भ में प्रतिज्ञा की थी, उसकी विधि बता

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

कर अन्त में कहा है 'एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम्।' इत्यादि इस प्रकार गुहाशायी निष्कल परमात्मा का साक्षात्कार करके विद्वान स्वयं ब्रह्मरूप हो जाता है ।।२४।।

यहाँ कैवल्योपनिषद् का प्रथम खण्ड समाप्त होता है।

यः शतरुद्रीयमधीते सोऽग्निपूतो भवति, स वायुपूतो भवति, स आत्मपूतो भवति, स सुरापानात्पूतो भवति, स ब्रह्महत्यात्पूतो भवति, स स्वर्णस्तेयात्पूतो भवति, स कृत्याकृत्यात्पूतो भवति, तस्मादविमुक्तमाश्रितो भवति, अत्याश्रमी सर्वदा सकृद्वा जपेत्। अनेन ज्ञानमाप्नोति, संसारार्णवनाशनम्। तस्मादेवं विदित्वैनं कैवल्यं फलमश्नुते कैवल्यं फलमश्नुते इति ।।२५।।

इति कैवल्योपनिषदि द्वितीयः खण्डः ।।२।।

ॐ सहनाववत्विति शान्तिपाठः

अर्थ—जो शतरुद्रीय का अध्ययन करता है, वह अग्निपूत हो जाता है, वह वायुपूत हो जाता है, वह आत्मपूत हो जाता है, वह मदिरापान के महापातक से छूट जाता है, वह ब्राह्मण की हत्या से छूट जाता है, वह ब्राह्मण के स्वर्ण चुराने के महापातक से छूट जाता है, वह बुद्धिपूर्वक कृत पातक से तथा करणीय कर्म के अकरणरूप पातक से छूट जाता है। इसलिये वह आत्मा के आश्रय हो जाता है। परमहंस अथवा ज्ञान-साधनयुक्त मुमुक्षु सदा अथवा दिन में एक बार इसका जप (पाठ, विचार, अभ्यास) करे। इससे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। संसार-सागर का नाश यानी अज्ञाननाश होता है। इसलिये ब्रह्म को, शतरुद्रीय में बताये मार्ग से, साक्षात् जान कर कैवल्यमोक्षरूप फल भोगता है, कैवल्यमोक्षरूप फल भोगता है।

व्याख्या—अब फलश्रुति बताते हैं। इसका बीजरूप संकेत प्रथम मंत्र में ही है। 'यया अचिरात् सर्वपापं व्यपोह्य, परात्परं

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

पुरुषं याति विद्वान् ।' जिस ब्रह्मविद्या से तत्क्षण पाप नष्ट करके विद्वान् माया से भी सूक्ष्म ब्रह्म को प्राप्त होता है। इसी भाव की स्पष्टता फलश्रुति में की है। इस शतरुद्रीम का अध्ययन करनेवाला अग्निपूत, वायुपूत, आत्मपूत होता है, सुरापान, ब्रह्महत्या, ब्राह्मण के स्वर्ण की चोरी महापातकों से छूट जाता है, कृत्याकृत्य से छूट जाता है इत्यादि इन पापों के नष्ट होने पर वह आत्मा के आश्रित हो जाता है। इस शतरुद्रीय के अध्ययन से ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है, और भवसागर से पार होता है इत्यादि।

यः—जो मुमुक्षु, विवेकवैराग्यादि ज्ञानसाधनों से युक्त परन्तु जिसको आत्मसाक्षात्कार नहीं हुआ है, अथवा जिज्ञासु परमहंस **शतरुद्रीयम् अधीते**—ज्ञान मार्गियों की इस शतरुद्रीय का यथाशक्ति नित्य पाठ करता है; अर्थविचार, अभ्यास करता है, **सः अग्निपूतः भवति**—वह उसी पवित्रता को प्राप्त हो जाता है जो अग्नि द्वारा श्रौत स्मार्त विधि से पवित्रता को प्राप्त होता है। ताँबे, काँसे के अपवित्र पात्र अग्नि में तपाने से पवित्र हो जाते हैं, अग्नि में पड़ कर स्वर्ण कुन्दन बन जाता है। अग्निक्रिया पापरूपी मलों को दहन करती है। पापक्षय के लिये साधु लोग ज्येष्ठ मास में अग्नि के पाँच ढेरों के बीच में बैठ कर तपा करते हैं। शतरुद्री पाठक अनायास ही अग्नि-प्रदत्त शुद्धि को प्राप्त हो जाता है।

सः वायुपूतः भवति—वह वायु से पवित्र हो जाता है। अवधूतों के शरीर वायु लगने से पवित्र हो जाते हैं। स्वर्णपात्र वायु में रखने से पवित्र हो जाते हैं। 'पवनः पवतामस्मि।' गीता १०।३१। पवित्र करनेवालों में मैं पवन हूँ। पवन जो पवित्रता प्रदान कर सकता है उतनी पवित्रता इस शतरुद्री के पाठक को प्राप्त होती है। **सः आत्मपूतो भवति**—वह आत्मा के प्रति किये अपराधों से पूत हो जाता है। अज्ञानदशा में जो कर्ताभोक्ता, जन्ममरणादि रूप लांछना असंग अज अमर आत्मा पर लगाये हैं, उन दोषों से इस शतरुद्री का पाठक मुक्त हो जाता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

योऽन्यथा सन्तमात्मानमन्यथा प्रतिपद्यते ।
किं तेन न कृतं पापं चोरेणात्मापहारिणा ।।

सनत्सुजातीय

जो आत्मा के सत्यज्ञानानन्त स्वरूप को न बता कर उससे उलटा आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करता है, आत्मा के स्वरूप को चुरानेवाले उस चोर ने कौन-सा पाप नहीं किया । (उसने निर्दोष आत्मा पर मिथ्या लांछना आरोपित की है, अतः वह दोषी है ।) अथवा आत्मज्ञान से जो शुद्धि प्राप्त होती है, उस शुद्धि का भाजन शतरुद्री का पाठक हो जाता है, क्योंकि 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।' गीता ४।३८ । ज्ञान के सदृश पवित्र करनेवाला इस लोक में निःसन्देह अन्य कुछ नहीं है ।

नैष्कर्म्यसिद्धि में सुरेश्वराचार्य (ब्रह्मा के अवतार) ने भी कहा है ।

सोऽयमेवं प्रतिपन्नस्वभावमात्मानं प्रतिपन्नोऽनुक्रोशति ।
यत्र त्वस्येति साटोपं कृत्स्नद्वैतनिषेधिनीम् ।
प्रोत्सारयन्तीं संसारमप्यश्रौषं श्रुतिं न किम् ।। २।११८।

इस प्रकार वह ब्रह्मज्ञानी सच्चिदानन्द आत्मा को प्राप्त हो कर पश्चात्ताप करता है । 'जब तत्त्वज्ञान हो जाता है तब वह कहता कि हाय ! मैंने समस्त द्वैत का निषेध करनेवाली, संसार का उच्छेदन करनेवाली श्रुतिभगवती की वाणी को पहले क्यों न सुना ।'

सः सुरापानात् पूतः भवति—वह मदिरापान-जनित महापातक से छूट जाता है । मदिरापान महापातकों में से है ।

प्रतिषिद्धसुरापानं ब्रह्महत्या तथैव च ।
ब्राह्मणानां सुवर्णस्य हरणं मुनिपुंगवाः ।।६।।
महान्ति पातकान्याहुर्मुनयः सूक्ष्मदर्शिनः ।।७।।

सूतसंहिता ४।४१

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

हे श्रेष्ठ मुनियो ! सूक्ष्मदर्शी महात्माओं ने इनको महापातक कहा है—शास्त्र प्रतिषिद्ध मदिरापान, ब्राह्मण की हत्या, ब्राह्मणों का सुवर्ण चुराना......।

ब्राह्मणेन तथा कार्यं ब्राह्मण्यं न विनश्यति ।
ब्राह्मणो मदिरां दृष्ट्वा ब्राह्मण्यादेव हीयते ।।

ब्राह्मण को ऐसा आचरण करना चाहिये कि उसका ब्राह्मणत्व नष्ट न हो । ब्राह्मण मदिरा को लालचदृष्टि से देखने से ब्राह्मणत्व से पतित होता है ।

सः ब्रह्महत्यात् पूतः भवति—वह ब्राह्मण की हत्या से मुक्त हो जाता है, सः स्वर्णस्तेयात् पूतः भवति—वह ब्राह्मणों के सुवर्ण चुराने से जो महापातक होता है उससे पवित्र हो जाता है । सः कृत्य-अकृत्यात् पूतः भवति—वह बुद्धिपूर्वक किये हुए पाप से छूट जाता है, तथा जान-पूछ कर शास्त्रविहित कर्म को न करने से जो पातक लगता है उससे भी छूट जाता है ।

वेदान्तवाक्यजं ज्ञानं ब्रह्मात्मैकत्वगोचरम् ।
बुद्धिपूर्वकृतं पापं कृत्स्नं दहति वह्निवत् ।।२।।
सूतसंहिता ४।४२

वेदान्त महावाक्य से उत्पन्न जीवात्मा और परमात्मा के एकत्व का अनुभव ज्ञान जान-बूझ कर किये हुए समस्त पातक को दहन करता है, जैसे प्रज्वलित अग्नि ईंधन को भस्म करती है ।

यह स्मरण रहे कि शतरुद्री के पठन, अभ्यासादि से जो पापदहन बताये हैं, वे ज्ञान के सामर्थ्य की महिमा बताने के लिये कहे हैं, न कि इन पातकों की प्रोत्साहना के लिये कहे गये हैं । यह भी स्मरण रखना कि निर्विकल्प समाधि में जब अद्वितीय ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है, उस समय ज्ञान का सामर्थ्य प्रकाशित होता है । यदि परोक्ष

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

ज्ञानी निष्पाप होने का अहंकार करेंगे, तो उनको अशुभगति प्राप्त होगी। ब्रह्मदर्शन से कैवल्यमोक्ष प्राप्त करना प्रयोजन है, न कि महापातकों से मुक्त होना है। पापनाश तो प्रासंगिक है। साधकों की दृष्टि लक्ष्य पर होनी चाहिये, उपलक्ष्यों पर नहीं। ज्ञान साधकों से महापातक बनते ही नहीं हैं। पाप-निवारण रोचक फल, है। इस फलश्रुति का मुख्य प्रयोजन ज्ञान की ही उज्ज्वल महिमा बताने में है।

तस्मात् अविमुक्तम् आश्रितः भवति—इसलिये सर्वपापों से मुक्त हो कर, निरहंकार हुआ अविमुक्त के आश्रित हो जाता है। विमुक्त अर्थात् शास्त्रविरुद्ध, निषिद्ध कर्मानुष्ठान से मुक्त, धर्म-मर्यादारहित, पशु ; अ-विमुक्त यानी पशुपति, शिव, आत्मा। वह आत्मा के आश्रित यानी आत्माराम, आत्मक्रीड हो जाता है, मूढलोग विषयों में रमण करते हैं, आत्मवान् स्वस्वरूपानन्द में विभोर रहता है। समाधि से जागने पर भी वह स्वरूप से च्युत नहीं होता। उसको जगत् ब्रह्मरूप ही भासता है। महात्मा नारायण स्वामी के अनुसार, जो अ (अकर्म, निषिद्धकर्म) वि (विहितकर्म) से मुक्त (छुटकारा पाया हुआ), अर्थात् जो विधि निषेध से मुक्त हो वह अविमुक्त। वाराणसी को भी अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं, परन्तु यहाँ यह अर्थ असंगत है।

अत्याश्रमी सर्वदा सकृत् वा जपेत्—ज्ञानसाधनसम्पन्न साधक, अथवा ज्ञानाभिलाषी जिज्ञासु परमहंस संन्यासी सदा—जब तक ज्ञान न हो तब तक अथवा सामर्थ्यानुसार नित्य एक बार ज्ञानियों की इस शतरुद्रीय का पठन, मनन, निदिध्यासन करे।

अनेन ज्ञानम् आप्नोति—इसके पठन-मनन-निदिध्यासन से ब्रह्मविद्या प्राप्त करता है अर्थात् 'वह ब्रह्म मैं हूँ' इस प्रकार ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

संसार-अर्णव-नाशनम्—द्वैतरूप भयावह संसारसागर का नाश हो जाता है, अपने कारण अज्ञानसहित। इसका अर्थ यह नहीं है कि संसार का नाश हो जायेगा, सूर्य, चन्द्रमा, हिमालय, पृथ्वी आदि नष्ट हो जायेंगे। इसका यह अर्थ है कि संसार के प्रति ज्ञानवान की सत्यत्वबुद्धि नष्ट हो जायेगी। वह संसार को स्वप्न में देखे पदार्थों की भाँति मिथ्या जानेगा। मिथ्या वस्तु बाधा नहीं देती है। संसार में विलखते अज्ञानियों को देख कर ज्ञानवान् हँसेगा और अधिकारियों पर करुणा करके उन्हें ज्ञान देगा। संसार की प्रतीति अधिष्ठानरूप ब्रह्म के अज्ञान से होती है, ब्रह्मज्ञान से जब अज्ञान नष्ट हो जायेगा, तो कारण के अभाव में संसाररूप कार्य भी नष्ट हो जायेगा। जैसे ईषत् अंधकार में रज्जु सर्परूप भासता है, और रज्जु का ज्ञान होते ही सर्प का नाश हो जाता है, वैसे ही संसार के अधिष्ठान का बोध होते ही, संसार का खण्ड भी अवशेष नहीं रहता, यह अभिप्राय है।

तस्मात् एवं विदित्वा एनम् कैवल्यम् फलम् अश्नुते, कैवल्यम् फलम् अश्नुते।

इसलिये इस प्रकार यानी २४ मंत्रों में ब्रह्मविद्या प्राप्ति की जो विधि वताई है, उस विधि से इसका यानी परमात्मा, ब्रह्म का साक्षात्कार करके कैवल्यमोक्ष के फल को भोगता है, ब्रह्मरूप हो जाता है। पुनरुक्ति से उपनिषद की समाप्ति सूचित होती है।

यहाँ कैवल्योपनिषद् का द्वितीय खण्ड समाप्त होता है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

शान्तिपाठः

ओं सह नाववतु ।। सह नौ भुनक्तु ।। सह वीर्यं करवावहै ।। तेजस्विनावधीतमस्तु ।। मा विद्विषावहै ।।
ओं शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

व्याख्या—पूर्ववत् ।

इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु यतियतीन्द्र महामहा-मण्डलेश्वर महावेदान्तकेसरी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ अनन्त श्रीविभूषित पूज्यपाद दंडी स्वामी ओंकाराश्रम जी महाराज के शिष्य तथा हरियाणा निवासी ब्रह्मकुलभूषण पण्डित प्रवर हेमराज शर्मा के सुपुत्र मनोहरलाल शर्मा एम०ए० 'गुरुभक्तरत्न' द्वारा हिन्दी में रचित 'कैवल्योपनिषद्भाष्यम्' समाप्त।
श्रीगुरुचरणों में अर्पित

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

विरक्तावधूतस्य प्रशस्तिः

श्रुतौ कुण्डलेऽसृग् गले मुण्डमाला करे पानपात्रं मुखे हन्त हाला।
परित्यक्तकर्मा लयन्यस्तधर्मा विरक्तोऽवधूतो द्वितीयो महेशः ।।५५।।
वामे रामा रमण कुशला दक्षिणे पानपात्रं
मध्ये न्यस्तं मरिचसहितं शूकरस्योष्णमांसम्।
स्कन्धे वीणा ललित सुभगा सद्गुरूणां प्रपञ्चः।
कौलो धर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।।५६।।

[तत्रैवैकविंशदुल्लासे]

कानों में कुण्डल, गले में मुण्डमाला, चतुर्दश विद्याओं का अनुक्षण चिन्तन, में ब्रह्म चिन्तनरूपी पानपात्र और मुख में प्रतिक्षण अद्वैत की मस्ती का भाव सम्पूर्ण विधिनिषेध के कर्मों से पृथक् और उस सत्तत्व में आत्मभाव को लीन कर सहज आत्मरति में ही अपना रमण करता है ऐसा विरक्त अवधूत साक्षात् द्वितीय महेश है।

वाम पार्श्व में रमण कुशल वामा (इड़ा) है, अर्थात् तत्परक साधना है दक्षिण पार्श्व में पानपात्र है, सतत योगपरायण हो ब्रह्म साक्षात्कार की मतवाली स्थिति में मग्न चित्त है। बीच में नाना भोग्यपदार्थों का (षट्चक्र सेवन विधियों का) सामूहिक सम्भार सजा हुआ है। कन्धे पर ललितवाद्य विस्तार करनेवाली वाणी की प्रतिनिधि वीणा है। जो कुछ उसके पास है वह ब्रह्मविद्या तत्व में लय होकर समाधिरूप में विचरना ही उसका पूरा प्रपंञ्च है जो कुलक्रमागत गुरुओं की शिक्षा है। इस प्रकार सहज परमतत्त्व का साक्षात्कार करानेवाला इष्ट शिव प्राप्ति का मार्ग परम गहन है और योगियों को भी अगम्य है, उनके भी बुद्धिगम्य नहीं है।

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri

आन्तरिक अभिलाषा

सुरस्रोतस्विन्याः पुलिनमधितिष्ठन्नयनयो-
र्विधायान्तर्मुद्रामथ सपदि विद्राव्य विषयान् ।
विधूतान्तर्ध्वान्तो मधुरमधुरायां चिति कदा-
निमग्नः स्यां कस्यांचन नवनभस्याम्बुदरुचि ॥

[जगन्नाथः पण्डितराजः]

पुण्य सलिला भगवती भागीरथी के पुलिन (तट) पर बैठकर आँखों में अन्तर्मुद्रा लगा सम्पूर्ण विषयों से अन्तःकरण को रोक कर सम्पूर्ण आणवमल रूपी अज्ञानान्धकार को धोकर नवनीलनीरदश्यामलकान्तिवाले मधुर मधुर चिद्ब्रह्म में मैं कब निमग्न होऊँगा ?

जनवाणी प्रिण्टर्स एण्ड पब्लिशर्स प्राइवेट लि०, १७८, अपर चितपुर रोड कलकत्ता-३
फोन नं० : ५५-५९३८

CC-0. Swami Atmanand Giri (Prabhuji) Veda Nidhi Varanasi. Digitzed by eGangotri